प्रकाशक
धन्यकुमार जैन और दौहित्र
हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता - ७

मूल्य स-जिल्द
सवा दो रुपया

रवीन्द्र-साहित्यकी
समस्त रचनाएँ
मूल बंगलासे
अनूदित हैं

मुद्रक
युनाइटेड कमर्सियल प्रेस लिमिटेड
३२, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट
कलकत्ता

आखिरी कविता

'शेषेर कविता'

उपन्यास

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

•

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता - ७

भारतकी राष्ट्रभाषा
हिन्दीमें
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका
सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह
मिल सके इस उद्देश्यसे यह
ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है
आशा है
सुरुचि-सम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और
पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे
और
जितना अधिक और जितनी जल्दी
अपनायेंगे
उतना ही इसका अनुवाद और
प्रकाशन-कार्य सुन्दरता और
शीघ्रतासे आगे वढ़ता जायगा

—धन्यकुमार जैन

आखिरी कविता

१— अमित-चरित

श्री अमित राय वैरिस्टर है। अंग्रेजी ढाँचेमें उसकी 'राय' उपाधिने जव 'रॉय' और 'रे' रूपान्तर धारण किया तव उसकी श्री तो जाती रही, किन्तु अक्षर-संख्या गई वढ़। यही कारण है कि अमितने अपने नाममें ऐसा फेरफार कर डाला कि अंग्रेज मित्र और मित्रानियोंके मुंहसे उसका उच्चारण वन गया 'ऑमिट राए'।

अमितके वाप थे दिग्विजयी वैरिस्टर। वे जिस संख्यामें रुपये इकट्ठा कर गये थे वह आगेकी तीन पीढ़ियोंके अधःपतनके लिए काफी था। किन्तु पैत्रिक सम्पत्तिके इस घातक संघातमें भी अमित विना किसी विपत्तिके ऐसा वचकर निकल गया कि इस जीवनमें उसके कोई आँच ही नहीं आई।

कलकत्ता-विश्वविद्यालयके वी०ए०के कोठेमें पाँव रखनेके पहले ही अमित ऑक्सफोर्डमें जाकर भरती हो गया। वहाँ परीक्षा देते-देते और न देते-देते उसके सात साल यों ही वीत गये। वुद्धि ज्यादा होनेसे उसने पढ़ाई-लिखाई ज्यादा नहीं की, किन्तु फिर भी विद्यामें वह कम नहीं मालूम पड़ता। उसके पिताने उससे किसी असाधारण वातकी प्रत्याशा नहीं की थी। उनकी इच्छा थी कि उनके एकमात्र पुत्रके मनपर ऑक्सफोर्डका रंग ऐसा पक्का होकर चढ़े कि देशमें आनेके वाद भी भट्टी[1] सह सके।

अमितको मैं पसन्द करता हूं। खासा लड़का है। मैं हूं नवीन लेखक। संख्यामें मेरे पाठक कम हैं, किन्तु योग्यतामें उन सवमें श्रेष्ठ है अमित।

---

१ धोवीकी भट्टी। अर्थात् देशकी भट्टीपर चढ़नेपर भी रंग वना रहे।

मेरी रचना-शैलीका ठाट उसकी आँखोंमें खूब समाया है। उसकी धारणा है कि 'हमारे देशके साहित्य-बाजारमें जिन लोगोंका नाम है उनके स्टाइल (शैली) नहीं है। जीव-सृष्टिमें ऊंट जन्तु जैसा है, इन लेखकोंकी रचना भी वैसी ही है। कँधे और गरदन, सामने और पीछे, पीठ और पेट सब बेढंगे हैं। चाल है ढीलीढाली और डगमग। बंगला-साहित्यकी खुरमुंड सफाचट मरुभूमिमें ही उसका चलन है।' समालोचकोंसे पहलेसे ही कह देना अच्छा है कि यह मत मेरा नहीं है।

अमितका कहना है, फैशन है 'मुखोश' और स्टाइल 'मुखश्री'।[1] उसकी रायमें, "जो लोग साहित्यके अमीर-उमराव दलके हैं और जो अपनी तबीयत से अपना मन रखकर चलते हैं, स्टाइल (शैली) उन्हींकी है। और जो अमला-फैला दलके हैं और अन्य पाँच-जनोंका मन रखना जिनका पेशा है, फैशन उनकी चीज है। बंकिमी शैली बंकिमचन्द्रके 'विषवृक्ष'में है। बंकिम ने उसमें अपनेको सुन्दरतासे निभा लिया है। और बंकिमी फैशन है नसीराम-लिखित 'मनमोहनके मोहनबगान'में, उसमें नसीरामने बंकिमको मिट्टी कर दिया है। 'बारोयारी'में[2] तम्बूकी कनातके नीचे सिर्फ पेशेवर नर्तकियोंके दर्शन मिलते हैं, किन्तु 'शुभ-दृष्टि'के समय वधूके मुंह देखनेकी शुभ घड़ीमें तो बनारसी दुपट्टेका घूंघट चाहिए ही चाहिए। इसमें कनात हुई फैशनकी चीज और बनारसी दुपट्टा स्टाइलकी, विशेषका मुखड़ा विशेष रंगकी छायामें देखनेके लिए।" अमित कहता है, "बाजारके लोगोंके पैदल चलनेके रास्तेके बाहर हमलोगोंके पैर कदम रखनेका साहस नहीं करते, इसीसे हमारे देशमें स्टाइलका इतना अनादर है। दक्षयज्ञकी कथामें इस बातकी पौराणिक व्याख्या मिलती है। इन्द्र-चन्द्र-वरुण स्वर्गके बिलकुल

---

१ 'मुखोश'—मुखकोश, अर्थात् कागज आदिका बना नकली चेहरा। मुखश्री—मुंहकी शोभा या सौन्दर्य।

२ बारहयारी—बारोयारी। बारह (बहुत) यार या मित्र मिलकर जिस पूजा-उत्सवको करते हैं, उसे 'बारोयारी' कहते हैं। इसमें रामलीला के ढंगके नाटक (यात्रा) और अन्यान्य खेल वगैरह भी खेले जाते हैं।

फैशन-दुरुस्त देवता थे, याज्ञिक-इलाकेमें उन्हें निमंत्रण भी मिल जाया करता था। शिवके थी स्टाइल, और वह इतनी ऑरिजिनल कि मंत्र-घोंकू यजमान लोग उन्हें हव्य-कव्य देना कायदेके खिलाफ समझते थे।" ऑक्सफोर्डके बी०ए०के मुंहसे ये सब बातें सुनना मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि मेरा विश्वास है कि मेरे लिखनेमें स्टाइल है, और इसलिए मेरी सभी पुस्तकें एक ही संस्करणमें कैवल्यको प्राप्त हो जाती हैं, वे 'न पुनरावर्तन्ते'।

मेरे साले नवकृष्णको अमितकी ये सब बातें बिलकुल ही सहन नहीं होतीं। वह कहता है, 'रक्खो तुम्हारा ऑक्सफोर्डका पास!' वह ठहरा अंग्रेजी साहित्यमें रोमहर्षक एम०ए०, उसे पढ़ना पड़ा है बहुत और समझना पड़ा है कम। उस दिन उसने मुझसे कहा, "अमित हमेशा जो छोटे लेखकोंको बड़ा बनाया करता है, सो सिर्फ बड़े लेखकोंको छोटा करनेके लिए। अवज्ञा का ढोल पीटना उसके शौकमें शामिल है। और, तुम्हें उसने बनाया है अपने ढोलका डंडा।"

दुःखकी बात है कि इस आलोचनाके स्थानपर मौजूद थीं मेरी स्त्री, स्वयं उसकी सहोदरा। परन्तु परम सन्तोषकी बात यह है कि मेरे सालेकी बात उन्हें जरा भी अच्छी नहीं लगी। मैं देखता हूं कि अमितके साथ ही उनकी रुचि ज्यादा मेल खाती है, हालाँ कि उन्होंने पढ़ा-सुना ज्यादा नहीं है, फिर भी, स्त्रियोंकी स्वाभाविक बुद्धि आश्चर्यजनक होती है।

बहुधा मेरे मनमें भी खटका हो जाया करता है जब देखता हूँ कि कितने ही नामी अंग्रेज लेखकोंको भी नगण्य कहते हुए अमितकी छाती नहीं दहलती। वे हैं जिन्हें कहा जा सकता है बहूबाजारके[1] चालू लेखक, बड़ेबाजारकी छाप-शुदा, प्रशंसा करनेके लिए जिनकी रचना पढ़-देखनेकी जरूरत ही नहीं, आँख मीचकर गुण-गान करनेसे ही पास-मार्क मिल जाते हैं। अमितके लिए भी उनकी रचनाएँ पढ़-देखना अनावश्यक है, आँख

---

१ 'बहूबाजार' कलकत्तेका एक मुहल्ला है, जिसमें ऐसे पत्रों और पुस्तकोंका प्रकाशन होता है जिनका दृष्टिकोण व्यापारमात्र है।

मीचकर उनकी निन्दा करनेमें उसे कोई खटका या झिझक नहीं। असलमें, जो नामी लेखक हैं वे उसके लिए बहुत ज्यादा सरकारी हैं, वर्धमान स्टेशनके वेटिंग-रूमकी तरह, और जिन्हें उसने स्वयं ढूंढ़ निकाला है उनपर उसका ास दखल है, अर्थात् वह ठहरा स्पे शल ट्रेनका सेलून-कमरा।

अमितका नशा ही है स्टाइलमें। सिर्फ साहित्य चुननेके काममें ही नहीं, वेश-भूषा और व्यवहारमें भी। उसके चेहरेपर एक विशेष छन्द, एक खास ढंग है। पाँच जनोंमें वह कोई एक नहीं है, वह है बिलकुल पंचम। औरोंसे अलग ही उसपर दृष्टि पड़ती है। दाढ़ी-मूंछ सफाचट, मजा-घसा चिकना श्यामवर्ण परिपुष्ट चेहरा, स्फूर्ति-भरा भाव, आँखें चंचल, हँसी चंचल, हिलना-डुलना और चलना-फिरना चंचल, बातका जवाब देनेमें जरा भी देर नहीं होती, और मन है ऐसा एक तरहका चकमक-पत्थर कि ठन-से जरा ठोंकते ही चिनगारियाँ छूटने लगती हैं। अकसर वह देशी कपड़े पहना करता है, क्योंकि उसके दलके लोग देशी नहीं पहनते। धोती पहनता है बगैर-किनारीकी सफेद, और खूब जतनसे चुनी हुई, क्योंकि उसकी-सी उमरमें इस तरहकी धोती पहननेका चलन नहीं। खूब ढीला ढाला कुरता पहनता है, जिसमें बायें कँधेसे लेकर दाहनी तरफकी कमर तक बटन लगे रहते हैं और उसकी आस्तीनोंके सामनेके हिस्से कोहनी तक दो भागोंमें विभक्त होते हैं, कमरमें धोतीको घेरे-हुए एक जरीदार चौड़ा कत्थई रंगका फीता है, जिसके बाईं तरफ लटका करती है वृन्दावनी छींटकी एक छोटी-सी थैली, और उसमें रहती है उसकी घड़ी। पाँवोंमें पहनता है सफेद चमड़ेपर लाल चमड़ेका काम किया-हुआ कटकी जूता। जब कभी बाहर जाता है तो एक तह किया-हुआ किनारीदार मद्रासी दुपट्टा बाँयें कँधेसे घुटने तक लटकता रहता है। मित्र-मंडलीमें जब कहींसे उसे निमन्त्रण मिलता है तो सिरपर मुसलमानी ढंगकी लखनवी पल्लेदार टोपी पहन लेता है, सफेदपर सफेद कामदार। इसे ठीक पोशाक नहीं कहा जा सकता, यह है उसकी एक तरहकी जोरकी हँसी। उसकी विलायती पोशाकका मर्म भी मेरी समझमें नहीं आता। जो समझते हैं वे कहते हैं 'कुछ ढीली-ढाली

जरूर है, पर है अंग्रेजीमें जिसे कहते हैं डिस्टिंगुइस्ड्।' अपनेको अपूर्व और अजीव दिखानेका शौक उसे नहीं है, मगर फैशनकी दिल्लगी उड़ानेका कौतुक उसमें काफीसे ज्यादा है। किसी तरह उमर मिलाकर जन्मपत्रीके सबूतके बूतेपर जो युवक हैं उनके दर्शन तो राह-चलते मिल जाया करते हैं, पर अमितका दुर्लभ युवकत्व निर्जला यानी विशुद्ध यौवनके ही जोरपर है; असलमें वह है बिलकुल बेहिसाबी, उड़ाऊ, बाढ़की तरह बहा जा रहा है बाहरकी ओर, सब-कुछ लिये जा रहा है बहाये, हाथमें कुछ नहीं रखता।

इधर उसकी दो बहनें हैं, जिनके चालू नाम हैं सिसी और लिसी। मानो वे नूतनबाजारमें[1] बिलकुल हालकी-आई ताजा सब्जी हों, फैशनकी डालीमें आपाद-मस्तक जतनसे पैक-किये-हुए पहले नम्बरके खास पैकेट। ऊँचे खुरवाले जूते हैं, खुली छातीकी लैसदार जाकेटकी खुली जगहमें कहरुवा मिश्रित मूंगेकी माला है, और देहपर तिरछी भंगिमासे कसके लिपटी-हुई है साड़ी। वे खुटखुट करके द्रुत-लयमें चलती हैं, ऊँचे स्वरोंमें बोलती हैं और स्तर-स्तरसे उठाती रहती हैं सूक्ष्माग्र हँसी। मुंहको जरा तिरछा करके स्मित हास्यके साथ ऊँचे कटाक्षसे निहारती हैं, जानती हैं कि किसे कहते हैं, 'सारगर्भ चितवन'। गुलाबी रेशमका पंखा क्षण-क्षणमें गालोंके पास फुरफुराया करती हैं, और पुरुष मित्रकी कुरसीके हत्थेपर बैठकर पंखेके आघातसे उनकी कृत्रिम स्पर्धापर तर्जन प्रकट किया करती हैं।

अपने दलकी तरुणियोंके साथ अमितका व्यवहार देखकर उसके दलके पुरुषोंके मनमें ईर्षाका उदय होता है। निर्विशेष-भावसे स्त्रियोंके प्रति अमितके औदासीन्य नहीं है, और विशेष-भावसे किसीके प्रति आसक्ति भी देखनेमें नहीं आती उसमें, किन्तु साथ ही साधारण-भावसे कहींपर मधुर रसका अभाव भी नहीं होता। एक वाक्यमें कहा जाय तो कहना होगा कि औरतोंके सम्बन्धमें उसके आग्रह नहीं है, उत्साह है। अमित पार्टियोंमें

१ कलकत्तेकी एक सब्जी-मंडी।

भी जाता है, ताश भी खेलता है, और अपनी तबीयतसे ही खेलमें हारता है। जिस स्त्रीका गला बेसुरा होता है उससे दूसरी बार गानेके लिए जिद करता है। किसीको भद्दे रंगके कपड़े पहने देखता है तो पूछता है कि 'यह कपड़ा किस दूकानपर मिलता है?' किसी भी आलापिताके साथ बात करता है तो खास पक्षपातका स्वर लगाता है, और मजा यह कि सभी जानते हैं कि उसका पक्षपात बिलकुल निरपेक्ष है। जो आदमी बहुत देवताओंका पुजारी है, एकान्तमें वह सभी देवताओंकी 'सब देवताओंसे बड़ा' कहकर स्तुति किया करता है। देवताओंके भी समझनेमें कुछ बाकी नहीं रहता, किन्तु फिर भी वे खुश होते हैं। लड़कियोंकी माताओंकी आशा तो किसी भी तरह कम नहीं होती, किन्तु लड़कियोंने समझ लिया है कि 'अमित सुनहले रंगकी दिगन्त-रेखा है, पकड़ाई दिये-हुए ही है किन्तु पकड़में आयेगा हर्गिज नहीं।' स्त्रियोंके विषयमें उसका मन सिर्फ तर्क ही किया करता है, मीमांसापर नहीं पहुँचता। इसीलिए कहीं-न-पहुँचनेके आलाप-परिचयके मार्गमें उसके इतना दुःसाहस है। और इसीसे बड़ी आसानीसे वह सबके साथ मेल-जोल कर सकता है। पासमें दाह्य-वस्तु रहनेपर भी उसकी तरफकी आग्नेयता निरापद सुरक्षित है।

उस दिन पिकनिकमें, गंगा-किनारे जब उस पारकी घनी काली पुंजीभूत स्तब्धताके ऊपर चाँद निकला तब उसके पास थी लिली गांगुली। उससे उसने मृदुस्वरमें कहा, "गंगाके उस पार वह नया चाँद है, और इस पार तुम हो और मैं हूँ। ऐसा समावेश अनन्तकालमें फिर कभी नहीं होनेका।"

पहले तो लिलीका मन एक क्षणमें छलछला उठा था, पर वह जानती थी कि अमितकी इस बातमें जो भी कुछ सत्य है वह है सिर्फ उसके कहनेके ढंगमें। उससे ज्यादा दावा करनेके मानी हैं बुद्बुदके ऊपरकी वर्णच्छटा पर दावा करना। इसीसे, अपनेको क्षण-भरकी बेहोशीसे अलग ढकेलकर लिली हँस उठी, बोली, "ऑमिट, तुमने जो कहा वह इतना ज्यादा सच है कि न कहनेसे भी चल जाता। अभी-अभी यह जो एक मेढ़क टपसे पानीमें कूद पड़ा, सो, यह भी तो अनन्तकालमें फिर कभी नहीं होनेका।"

अमित हँस दिया, वोला, "फर्क है, लिली, असीम फर्क है। आजकी संध्यामें उस मेढ़कका कूदना एक गैरसिलसिलेकी टूटी-फूटी चीज है। मगर तुममें हममें और चांदमें, गंगाकी धारामें, आकाशके तारोंमें एक सम्पूर्ण ऐकतानिक सृष्टि है, वेटोफेनकी 'चन्द्रालोक-गीतिका' है सर्वत्र। और मुझे तो लगता है कि विश्वकर्माके कारखानेमें एक स्वर्गीय पागल सुनार है, उसने ज्यों ही एक निर्दोष गोल सोनेके चक्रमें नीलमके साथ हीरा और हीराके साथ पन्ना लगाकर एक पहरकी अँगूठी वनाकर पूरी की, त्यों ही उसे समुद्रके पानीमें डाल दिया। अव उसे ढूंढ़कर कोई पा नहीं सकता।"

"अच्छा ही हुआ, तुम्हारे लिए कोई फिकरकी वात नहीं रही, ऑमिट, विश्वकर्माके सुनारका विल तुम्हें नहीं चुकाना पड़ेगा।"

"लेकिन, लिली, करोड़ों-अरवों युगोंके वाद अगर कहीं दैवसे मंगल ग्रहके लाल अरण्यकी छायामें, उसकी किसी-एक हजार-कोसी नहरके किनारे मेरी-तुम्हारी आमने-सामने भेंट हो जाय, और अगर शकुन्तलाका वह मल्लाह वोयल मछलीका पेट चीरकर आजके इस अपूर्व सुनहले क्षणको हमारे सामने ला धरे, तव हम चौंककर एक दूसरेके मुंहकी तरफ देखते ही रह जायेंगे। फिर क्या होगा सोच देखो।"

लिलीने अमितको पंखेसे मारकर कहा, "फिर सुनहला क्षण अनमना होकर छूटके जा पड़ेगा समुद्रके पानीमें। फिर वह ढूंढ़े नहीं मिलेगा। पागल सुनारके गढ़े-हुए ऐसे तुम्हारे कितने ही क्षण छूटकर गिर गये हैं। भूल गये हो, इसीसे उनका कोई हिसाव नहीं रहा।"

इतना कहकर लिली चटसे उठकर अपनी सखियोंके साथ जा मिली। वहुत-सी घटनाओंमेंसे मात्र एक घटनाका यहाँ नमूना दे दिया गया है।

अमितकी वहनें सिसी और लिसी उससे कहतीं, "अमी, तुम व्याह क्यों नहीं करते ?"

अमित जवाव देता, "व्याहके मामलेमें सवसे जरूरी चीज है पात्री, उसके वाद पात्र।"

सिसी कहती, "तुमने तो दंग कर दिया, अमी ! लड़की तो इतनी हैं–"

अमित कहता, "लड़कीसे व्याह होता था उस प्राचीन कालमें, लक्षण मिलाकर। मैं चाहता हूँ पात्री, अपने परिचयसे ही जिसका परिचय हो, और जगतमें वह अद्वितीय हो।"

सिसी कहती, "तुम्हारे घर आते ही तुम होगे प्रथम, और वह होगी द्वितीय, और तुम्हारा परिचय ही होगा उसका परिचय।"

अमित कहता, "मैं मन-ही-मन जिस लड़कीकी व्यर्थ आशामें वरेखी कर रहा हूँ वह बगैर-ठिकानेकी लड़की है। अकसर वह घर तक नहीं आ पाती। वह आकाशसे गिरता-हुआ तारा है, जो हृदयका वायुमण्डल छूते न-छूते ही जल उठता है, हवामें विला जाता है, घरकी मिट्टी तक आ ही नहीं पाता।"

सिसी कहती, "अर्थात्, वह तुम्हारी बहनोंके समान कतई नहीं।"

अमित कहता, "अर्थात्, वह घरमें आकर सिर्फ घरके आदमियोंकी संख्या नहीं बढ़ाती।"

लिसी कहती, "अच्छा, बहन सिसी, विमी बोस तो अमीके लिए पलक बिछाये राह देख रही है, इशारा करते ही दौड़ी चली आती है। वह इन्हें क्यों नहीं पसन्द? कहते हैं, 'उसमें कलचर नहीं।' क्यों, बहन, वह तो एम०ए०में 'बॉटनी'में फर्स्ट है। आखिर विद्याको ही तो कलचर कहते हैं।"

अमित कहता, "हाँ, कमल-हीरेके पत्थरको ही विद्या कहते हैं, और उससे जो प्रकाश छिटक निकलता है उसे कलचर कहते हैं। पत्थरमें भार है, और प्रकाशमें है दीप्ति।"

लिसी गुस्सेमें आकर कहती, "हुँःह्, विमी बोसका आदर नहीं इनके मनमें। ये खुद ही क्या उसके योग्य हैं! तुम अगर विमी बोससे व्याह करनेके लिए पागल भी हो उठो, तो मैं उसे सावधान कर दूंगी कि वह तुम्हारी तरफ मुंह फेरके ताके भी नहीं।"

अमित कहता, "पागल बगैर हुए मैं विमी बोसके साथ व्याह करना ही क्यों चाहूँगा? उस समय मेरे व्याहकी चिन्ता न करके योग्य चिकित्सा की ही चिन्ता करनी होगी।"

आत्मीय-स्वजनोंने तो अमितके व्याहकी आशा ही छोड़ दी है। उन लोगोंने तय कर लिया है कि व्याहकी जिम्मेदारी लेनेकी योग्यता ही नहीं उसमें, इसीसे वह सिर्फ असम्भवका स्वप्न देखकर और उलटी वातें कहकर आदमीको चौंकाता फिरता है। असलमें उसका मन है 'आलेयाका प्रकाश'[1] मैदान हो या रास्ता सर्वत्र धोखा ही दिया करता है, उसे पकड़के घरमें नहीं लाया जा सकता।

इन दिनों अमित जहाँ-तहाँ हा-हा हो-हो करता फिरता है। 'फिरपो' की दूकानमें[2] जिसे-तिसे चाय पिलाया करता है, और चाहे जव मित्रोंको मोटरमें विठाकर अनावश्यक घुमा लाता है। यहाँ-वहाँसे चाहे जो चीज खरीदता और चाहे जिसको वाँट देता है, और अंग्रेजी कितावें हाल-की-हाल खरीदकर चाहे जिसके घरमें डाल आता है, फिर लाता हीं नहीं।

उसकी वहनें उसके जिस स्वभावके कारण उससे सख्त नाराज रहती हैं वह है उसका उलटी वात कहनेका ढंग। सज्जनोंकी सभामें जो कुछ सर्वजन-अनुमोदित होगा उसके विपरीत वह कुछ-न-कुछ कह ही वैठेगा।

एक दिन जव कि कोई राष्ट्रतत्त्ववेत्ता प्रजातन्त्रके गुण वर्णन कर रहा था तव अमित वहाँ कह वैठा, "विष्णुने जव सतीके मृत-शरीरको खण्ड खण्ड कर डाला तव देश-भरमें जहाँ-तहाँ उनके एक सौसे ज्यादा पीठस्थान वन गये। डिमॉक्रैसी-(प्रजातंत्र) ने आज जहाँ देखो वहाँ न-जाने कितनी टुकड़ियोंमें ऐरिस्टॉक्रैसी (कुलीनतंत्र) की पूजा शुरू करा दी है, टूंक-टूंक ऐरिस्टॉक्रैसियोंसे पृथिवी छा गई है। कोई पॉलिटिक्स (राजनीति) में है तो कोई साहित्यमें, तो कोई समाजमें। उनमेंसे किसीमें भी गाम्भीर्य नहीं है, क्योंकि उन्हें अपनेपर विश्वास नहीं।"

एक दिन स्त्रियोंपर पुरुषके आधिपत्यके अत्याचारोंके विषयमें कोई समाज-हितैषी अवला-वान्धव पुरुषोंकी निन्दा कर रहा था। अमित मुंहसे

---

१ लूक, मिथ्याग्नि। पिचाश-दीपिका। २ कलकत्तेका एक प्रद्धसि अंग्रेजी होटल।

सिगरेट अलग करके चटसे कह बैठा, "पुरुषोंके अधिपत्य छोड़ते ही स्त्रियाँ आधिपत्य शुरू कर देंगी। दुर्बलका आधिपत्य बड़ा भयंकर होता है।"

सभी अबलाएँ और अबला-बान्धव गरम हो उठे, बोले, "इसके मानी क्या ?"

अमितने कहा, "जिस पक्षके अधिकारमें साँकल है वह साँकलसे ही चिड़ियोंको बाँधता है, अर्थात् जोरसे। और जिसके पास साँकल नहीं है वह बाँधता है अफीम खिलाकर, अर्थात् मायासे। साँकलवाला बाँधता जरूर है, पर भरमाता नहीं। अफीमवाली बाँधती भी है और भरमाती भी। स्त्रियोंकी डिबिया अफीमसे भरपूर है, और प्रकृति शैतानिन उन्हें मदद पहुँचाया करती है।"

एक दिन इनलोगोंकी बालीगंजकी एक साहित्य-सभामें आलोचनाका मुख्य विषय था 'रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कविता'। अमित अपने जीवनमें इसी सभामें पहले-पहल सभापति होनेको राजी हुआ था, और गया था मन-ही-मन युद्ध-सज्जासे सज्जित होकर। एक पुराने जमानेके-से बहुत ही भले आदमी वक्ता थे। यही प्रमाणित करना उनका उद्देश्य था कि रवीन्द्रनाथकी कविता कविता ही है। दो-एक कालेजके अध्यापकोंके सिवा अधिकांश सदस्योंने यह बात स्वीकार कर ली कि प्रमाण किसी कदर सन्तोषजनक है।

सभापतिने उठकर कहा, "कवि मात्रके लिए यह उचित है कि वह पाँच वर्षकी मियादके भीतर-ही-भीतर कविता करे, पचीससे लेकर तीस तक। यह हम हर्गिज नहीं कहेंगे कि 'बादके कवियोंसे हम और भी कुछ अच्छी चीजें चाहते हैं', कहेंगे, 'हम और-कुछ चाहते हैं।' फजली आम निबट जानेपर यह नहीं कहेंगे कि 'फजलीसे बढ़िया आम लाओ।' कहेंगे, 'नूतनबाजारसे बड़े-बड़े देखकर कुछ शरीफे तो ले आओ।' कच्चे नारियल की मियाद कम ही होती है, वह रसकी मियाद है, और पक्के कड़े नारियल की मियाद ज्यादा होती है, वह गरीकी मियाद है। कवि होते हैं क्षणजीवी, और दार्शनिककी उमरका कोई ठीक ही नहीं।......रवीन्द्रनाथके विरुद्ध

सबसे बड़ी शिकायत यह है कि हजरत वृद्ध वर्डस्वर्थकी नकल करके बहुत ही बेजा तरीकेसे जिन्दा हैं। यमराज बत्ती बुता देनेके लिए रह-रहकर फराश भेज रहे हैं, फिर भी हजरत कुर्सीका हत्था थामे खड़ेके खड़े ही रह जाते हैं। वे अगर सम्मानके साथ स्वयं ही नहीं हट जाते, तो हमारा कर्तव्य है कि उनकी सभा छोड़कर हम दल बाँधके उठके चले आयें। उनके बाद जो आयेंगे वे भी ताल ठोंकके गरजते हुए आयेंगे कि उनके राज्यका भी अन्त न होगा। अमरावती बँधी रहेगी मर्त्यलोकमें, उन्हींके दरवाजेपर। कुछ समय तक भक्तगण माला-चन्दन चढ़ायेंगे, भर-पेट खिलायेंगे-पिलायेंगे, साष्टाङ्ग प्रमाण भी करेंगे, और उसके बाद आयेगा उन्हें बलि देनेका पुण्य-दिवस, अर्थात् भक्ति-बन्धनसे भक्तोंके परित्राणका शुभलग्न। अफ्रीका में चतुष्पद देवताकी पूजा-पद्धति इसी तरहकी है। द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी, चतुर्दशपदी देवताओंकी पूजा भी इसी नियमसे होती है। पूजा जैसी चीजको एकरस बना देनेके समान अपवित्र अधार्मिकता और कुछ हो ही नहीं सकती। ......अच्छा लगनेका ऐवोल्यूशन (विकाश) होता है। पाँच साल पहलेका 'अच्छा लगना' पाँच साल बाद भी अगर एक ही जगह स्थिर खड़ा रहे तो समझ लेना चाहिए कि बेचारेको मालूम ही नहीं पड़ा है कि वह मर चुका है। जरा-सा धक्का देते ही उसे इस बातका पता चल जायगा कि सेन्टिमेन्टल (भावुक) आत्मीयजनोंने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेमें देर कर दी थी, शायद यथार्थ उत्तराधिकारीको हमेशाके लिए वंचित रखनेके अभिप्रायसे। रवीन्द्रनाथके दलके इस अवैध षड्यन्त्रको पब्लिकके आगे प्रगट कर देनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है।"

अपने मणिभूषणने चश्मेकी झलक डालकर प्रश्न किया, "यानी, आप साहित्यमेंसे लॉयल्टी (वफादारी) को उठा देना चाहते हैं?"

"बिलकुल! अबसे यह कवि-प्रेसिडेण्टका शीघ्र-निःशेषित युग शुरू है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें हमारा दूसरा वक्तव्य यह है कि उनकी रचना-रेखा उन्हींके हाथके अक्षरोंके समान है, गोल या तरंग-रेखा जैसी, गुलाब अथवा नारी-मुख या चन्द्रमाके ढंगकी। वह प्रिमिटिव (प्रारम्भिक)

है, प्रकृतिके हाथके अक्षरोंके समान।[1] नये प्रेसिडेन्टसे हम चाहते हैं कड़ी लाइनकी और खड़ी लाइनकी रचना, तीरके समान, वरछीके फलके समान, काँटेके समान,—फूल जैसी नहीं, विजलीकी रेखा जैसी, न्युरैल्जियाके दर्द जैसी, नुकीली, नुकीले गॉथिक गिर्जेके ढंगकी, मन्दिरके मंडपके ढंगकी नहीं, वल्कि जूट-मिल या सेक्रेटरियेट-विल्डिगके ढाँचेकी हो तो भी कोई नुकसान नहीं। .....अवसे फेंक दो मनको भरमानेवाली वाहियात छन्दवद्धताको, उससे छीन लेना होगा मनको, जैसे रावण छीन ले गया था सीताको। मन अगर रोते-रोते और आपत्ति करते-करते जाय, तो भी, उसे जाना ही होगा। अतिवृद्ध जटायु उसे रोकने आयेगा, और उसीमें उसकी मृत्यु होगी। उसके वाद कुछ दिन वीतते ही किष्किन्ध्या जाग उठेगी, और कोई हनुमान सहसा कूदकर लंकामें आग लगाके मनको पहलेकी जगह लौटा लानेकी व्यवस्था करेगा। तव फिर होगा टेनिसनके साथ हमारा पुनर्मिलन, वायरनके गलेसे लगकर आँसू वहायेंगे हम, और डिकेन्ससे कहेंगे कि 'माफ करो, मोहसे आरोग्य होनेके लिए ही हमने तुम्हें गालियाँ दी थीं।' .....मुगल वादशाहोंके समयसे लेकर आज तक देशके तमाम मुग्ध राजगीर मिलकर अगर भारत-भरमें जहाँ-तहाँ सिर्फ गुम्वजदार पत्थरके वुद्‌वुद ही वनाते जाते, तो भद्र-वंशका प्रत्येक आदमी जिस दिन वीस सालकी उमर पार करता उसी दिन वानप्रस्थ लेनेमें देर न करता। ताजमहलको अच्छा-लगानेकी खातिर ही ताज-महलका नशा छुड़ा देना जरूरी है।"

[यहाँपर इतना कह रखना जरूरी है कि शब्दोंके स्रोत या वेगको सम्हाल न सकनेके कारण सभाके रिपोर्टरका सर चकरा गया था; और उसने जो रिपोर्ट लिखी थी वह अमितकी वक्तृतासे भी कहीं ज्यादा अवोध्य हो गई थी। उसीमेंसे जो भी कुछ टुकड़ोंका उद्धार किया जा सका, उन्हें हमने ऊपर सजाके रख दिया है।]

---

१ यहाँ क्षीणतासे मतलव है। रवीन्द्रनाथके हस्ताक्षर जैसे सुगोल और सुन्दर हैं वैसे क्षीण (पतली रेखा-युक्त) भी हैं।

ताज-महलकी पुनरावृत्तिके प्रसंगमें रवीन्द्रनाथके भक्त आरक्त मुखसे कह उठे, "अच्छी चीज जितनी ज्यादा हो उतना ही अच्छा है।"

अमितने कहा, "ठीक इससे उलटी बात है। विधाताके राज्यमें अच्छी चीज थोड़ी ही होती है। इसीसे तो वह अच्छी है। नहीं तो, वह अपनी ही भीड़के धक्कोंसे हो जाती मामूली। ····· और, जो कवि साठ-सत्तर वर्ष तक जिन्दा रहनेमें जरा भी लज्जित नहीं होते, वे अपने आपको दण्ड देते हैं अपनेको सस्ता बनाकर। अन्तमें अनुकरणोंका झुंड चारों तरफ व्यूह रचकर उन्हें मुंह बिराया करता है। फिर उनकी रचनाओंका चरित्र बिगड़ जाता है, अपनी पहलेकी रचनाओंमेंसे चोरी शुरू करके उनकी रचनाएँ हो जाती हैं पूर्व-रचनाओंकी 'रिसीवर्स ऑफ स्टोल्न् प्रॉपर्टी'। ऐसी अवस्थामें, लोक-हितकी खातिर पाठकोंका यह कर्तव्य है कि इन सब अति-प्रवीण कवियोंको कदापि जीने ही न देना। शारीरिक जीनेकी बात नहीं कह रहा मैं, मेरा मतलब है उनके काव्यिक जीवनसे। बल्कि, इनकी परमायु लेकर जीते रहें प्रवीण अध्यापक, प्रवीण पॉलिटिशन (राजनीतिज्ञ) और प्रवीण समालोचक।"

उस दिनका एक वक्ता बीच ही में कह उठा, "क्या मैं जान सकता हूँ कि किसे आप प्रेसिडेन्ट बनाना चाहते हैं? कमसे कम उसका नाम तो बताइये।"

अमित चटसे कह बैठा, "निवारण चक्रवर्ती।"

सभाकी अनेक कुरसियोंसे आश्चर्य-भरी आवाज गूंज उठी, "निवारण चक्रवर्ती! है कौन वह?"

"आज जो आपलोगोंके मनमें फकत एक सवालका अंकुर-मात्र बना हुआ है, कल उसीमेंसे जवाबका पेड़ जाग उठेगा।"

"जाग उठनेके पहले कमसे कम उसकी करतूतका कोई नमूना भी तो दिखाइये!"

"तो सुनिये।"—कहते हुए अमितने जेबमेंसे एक पतली लम्बी कैम्बिस की जिल्दवाली कापी निकाली, और पढ़ना शुरू कर दिया :—

लाया हूँ
अपरिचितका नाम
धरणीमें
परिचित जनताकी सरणीमें।
हूं मैं आगन्तुक,
जन-गणेशका प्रचण्ड कौतुक।
खोलो द्वार,
सन्देश है विधाताका, सुनो सार।
महाकालेश्वरने
भेजे हैं दुर्लक्ष्य अक्षर,
है कोई दु:साहसी यहाँ
बीड़ा मौतका उठाकर
दे जो उसका दुरूह उत्तर?

नहीं सुना!
खड़ी है सेना मूढ़ताकी
राह रोके।
व्यर्थ ही क्रुद्ध होके
हुंकारकर आ पड़ती छातीपर,
तरङ्गोंकी निष्फलता
नित्य यथा
मरती सिर धुन-धुनके
शैल-तटपर,
आत्मघाती दम्भ भर।

पुष्पमाला नहीं मेरे, रीता है अन्तस्तल,
न वर्म है, न अंगद, न कुण्डल।

शून्य इस ललाट-पटपर अंकित है
गूढ़ विजय-टीका।
फटी गुदड़ी, दरिद्रका वेश।
करूंगा निःशेष
तुम्हारा भण्डार।
खोलो खोलो द्वार।

अकस्मात्
बढ़ाया मैंने हाथ
जो देना हो, दो साथ-साथ।
काँप उठा वक्षस्थल, कम्पित तेरा अर्गल,
वसुन्धरा है टलमल।
भयसे चीख उठा आर्त
दिगन्त विदारके,
"जा, लौट जा अभी,
रे दुर्दम्य दुर्जन भिखारी,
तेरी ही कण्ठध्वनि
घूम-घूम
निशीथ निद्राके हृदयमें भोंकती पैनी छुरी।"

लाओ अस्त्र लाओ।
झनझनाकर मेरे पंजरमें तुम घुसाओ।
मृत्युको मारती है मृत्यु, मारने दो,
अक्षय हैं मेरे प्राण
कर जाऊंगा दान।
बांधो मुझे, बांध लो,
सांकलोंमें जकड़ लो,

तोड़ूंगा एक क्षणमें
इतनी है शक्ति मनमें।
देखना, चकित हो
तेरी भी मुक्ति है
मेरी ही मुक्तिमें।

लाओ शास्त्र लाओ।
करो वार मुझपर, आओ।
पण्डित पण्डित मिलके
जोरोंसे हिल-हिलके
चाहेंगे करना खण्डन
दिव्य वाणी।
नहीं हानी।
जानता हूं
जितने भी हैं तर्क-वाण
उनका नहीं परित्राण
होकर सब टूंक-टूंक
सोते रहेंगे मूक।
खुलेंगी जीर्ण वाक्योंसे ढकी आंखें जब
देखोगे प्रकाश तब।

जलाओ आग अब।
आजकी जो है भलाई
हो भले ही कल बुराई,
होता है भस्म तो होने दो
रोता है विश्व तो रोने दो,
दूर करो दुःख-शोक।

मेरी अग्नि-परीक्षासे
अपूर्व महा दीक्षासे
धन्य हो विश्व-लोक।

वाणी दुर्बोध मेरी
विरुद्ध बुद्धिपर
मुष्टि-प्रहार कर,
करेगी उसे उच्चकित
आतंकित।
उन्मत्त ये मेरे छन्द
देंगे खूब धोखा-धुन्ध
शान्ति-लुब्ध मुमुक्षुको
भिक्षा-जीर्ण बुभुक्षुको।
पहले तर्क-युद्ध ठान
पीछे सब लेंगे मान,
माथेपर ठोंक हाथ,
पर न कभी एकसाथ।
क्रोध-भय-क्षोभमें
और मानव-लोकमें
जय अपरिचितकी जय,
अपरिचितका है परिचय,–
मेरा वह अपरिचित
वैशाखी रुद्र धुन्धसे करता धराको आन्दोलित,
मेघके कार्पण्यको
मुक्का मार वज्रका
गुप्त जल-संचयको
छिन्न-विछिन्न कर करता मुक्त विश्वमय।

रवि ठाकुरका दल उस रोज चुप रह गया। जाते वक्त धमकी दे गया, लिखके इसका जवाब देगा।

सारी सभाको वेवकूफ वनाकर मोटरमें वैठके अमित जव घर लौट रहा था, तव रास्तेमें सिसीने उससे कहा, "जरूर तुम एक वना-वनाया सावुत निवारण चक्रवर्ती पहले ही से गढ़कर अपनी जेवमें धर लाये थे, सिर्फ भले-आदमियोंको वेवकूफ वनानेके लिए।"

अमितने कहा, "अनागतको जो आदमी आगे ले आता है उसीको कहते हैं अनागत-विधाता। मैं वही हूं। निवारण चक्रवर्ती आज उतर आया है मर्त्यलोकमें, समझीं, अव उसे कोई रोक नहीं सकता।"

सिसी अमितके लिए मन-ही-मन वड़ा-भारी गर्व अनुभव किया करती है। उसने कहा, "अच्छा, अमी, तुम क्या रोज सवेरे उठतेके साथ ही उस दिनके लिए अपनी तमाम पैनाकर-कही-जानेवाली वातें तैयार करके रख लिया करते हो?"

अमितने कहा, "हो-सकनेवाली किसी भी वातके लिए हर वक्त तैयार रहनेका नाम ही सभ्यता है। वर्वरता संसारमें सभी विषयोंमें अप्रस्तुत रहती है। यह वात भी मेरी नोट-वुकमें लिखी है।"

"पर मुश्किल तो यह है, अमी, कि तुम्हारे पास 'अपनी राय' नामकी कोई चीज ही नहीं। जव जैसी वात खूव अच्छी सुनाई दे, वही तुम कह डालते हो।"

"मेरा मन दर्पण है, अपने वँधे-हुए मतोंसे ही हमेशाके लिए अगर उसे मैं लीप-पोतकर रख देता, तो उसपर प्रत्येक चालू क्षणका प्रतिविम्व नहीं पड़ता।"

सिसीने कहा, "अमी, प्रतिविम्व लिये-लिये ही तुम्हारी जिन्दगी कट जायगी।"

२–संघात

अमितने बहुत छानबीन करके आखिर शिलांग-पहाड़पर जाना ही तय किया, और गया भी वहीं। कारण, वहाँ उसकी मंडलीका और कोई नहीं जाता। दूसरा कारण यह भी है कि लड़कीवालोंकी वाढ़ उतनी जोरदार नहीं वहाँ। अमितके हृदयपर जो देवता रात-दिन तीर चलाते रहते हैं उनका आना-जाना फैशनेवुल मुहल्लोंमें ही ज्यादा होता है। देशके पहाड़ या पहाड़ियोंपर जितनी भी विलासिताकी वस्तियाँ हैं उनमेंसे इनलोगोंके लिए चाँदमारी करनेकी सबसे तंग जगह है शिलांग।

अमितकी बहनोंने अपना सिर झकझोरते हुए उससे साफ कह दिया, "तुम जाते हो तो अकेले चले जाओ, हममेंसे कोई नहीं जानेकी।"

बायें हाथमें हाल-फैशनकी नाटी छतरी, दाहिने हाथमें टेनिस-वैट और बदनपर नकली फारसी दुशालेका 'क्लोक' (लवादा) पहनके दोनों बहनें चल दीं दार्जिलिंग। विमी वोस वहाँ पहलेसे ही जा डटी थी। जब बगैर भाईके सिर्फ बहनोंका ही वहाँ समागम हुआ, तो चारों तरफ देखकर विमीने आविष्कार किया कि 'दार्जिलिंगमें जनता है, पर आदमी नहीं।'

अमित प्रायः सबसे कह गया था कि वह शिलांग जा रहा है एकान्तवास करने। पर दो दिन बीतते-न-बीतते वह समझ गया कि जनता न हो तो एकान्तवासका जायका ही मारा जाता है। कैमरा हाथमें लिये दृश्य देखते-फिरनेका शौक उसे नहीं है। उसका कहना है कि 'मैं विलायती टूरिस्ट या देशी भ्रमण-यात्री नहीं हूँ, मनमें चाखके खानेकी आदत है मेरी, आँखोंसे निगलकर खानेकी हवस मैं कतई नहीं रखता।'

कुछ दिन तो बीत गये उसके पहाड़की ढालपर देवदार-वृक्षोंकी छाया के नीचे, किताबें पढ़ते-पढ़ते। कहानियोंकी पुस्तक उसने छुई तक नहीं, क्योंकि छुट्टियोंमें कहानियोंकी किताब पढ़ना सर्वसाधारण लोगोंका कायदा है। वह पढ़ने लगा सुनीति चाटुर्ज्याका लिखा-हुआ ग्रन्थ 'वंगला भाषाका शब्दतत्त्व', लेखकके साथ उसका मतभेद होगा इस तीव्र आशाको मनमें लिये-हुए। परन्तु उसके शब्दतत्त्व-ज्ञान और आलस्य-जड़ताके संघर्षमें

सहसा सुन्दर दिखाई दे जाते वहाँके वन-जंगल और पहाड़-पहाड़ियोंके दृश्य, और साथ ही मनपर वे पूरी तौरसे घने होकर छा भी नहीं जाते। मानो वे किसी रागिनीके एकरस अलाप जैसे हों, जिनमें न स्थायी है, न ताल है, न शम है। अर्थात् उसमें 'अनेक' तो है किन्तु 'एक' नहीं। इसीसे ढीली चीज बिखर जाया करती है, इकट्ठी नहीं होती। अमित अपने निखिलके अन्दर एकके अभावमें बार-बार अपनी भीतरी चंचलतासे विक्षिप्त हो जाता है। यह दुःख उसका जैसा यहाँ है, वैसा ही शहरमें। परन्तु शहरकी उस चंचलताको वह नानाप्रकारसे क्षय कर डालता है, और यहाँ तो उसमें चांचल्य ही स्थायी होकर जमने लगता है, जैसे झरना रुकावट पाकर तालाब बनके बैठ जाता है। इसीसे जब वह सोच रहा था कि पहाड़की ढालसे उतरकर सिलहट-सिलचरके भीतरसे जहाँ जी चाहे पैदल भाग खड़ा होगा, ठीक उसी समय आषाढ़ आ पहुंचा पहाड़ों और वनोंमें, अपनी सजल घनच्छायाकी चादर धरतीपर लुटाता हुआ। खबर मिली कि चेरापुंजीके पर्वत-शिखरने नव-वर्षाके मेघोंके सामूहिक आक्रमणको अपनी छातीपर झेल लिया है, और घन-वर्षण अब निर्झरिणियोंको उन्मत्त करके कूल-हीन तट-हीन कर देगा। उसने तय किया कि ऐसे समयमें तो कुछ दिनके लिए चेरापुंजीके डाकबंगलेमें जाकर वह ऐसा मेघदूत जमा देगा कि जिसकी अदृश्य अलकापुरीकी नायिका अशरीरी बिजली-सी होगी, जो उसके चित्त-आकाशको क्षण-क्षणमें चमकाया करेगी; न तो वह अपना नाम लिखेगी, और न अपना कोई पता-ठिकाना ही छोड़ जायगी।

उस दिन उसने अपने पाँवोंमें हाइलैण्डरी मोटे ऊनी मोजे चढ़ाये, मोटे सुखतलवाले मजबूत जूते पहने, खाकी नफोंक कुरता पहना, घुटनों तक ओछा हाफ-पैण्ट डाट लिया और सिरपर सोलेका टोप दे मारा। देखनेमें अवनीन्द्र ठाकुर द्वारा अङ्कित 'यक्ष' जैसा नहीं हुआ, बल्कि ऐसा मालूम दने लगा जैसे सड़ककी जाँच करने कोई डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर निकल पड़ा हो। किन्तु जेबमें थीं पाँच-सातेक पतले एडिशनकी नाना भाषाओंकी काव्यकी पुस्तकें।

टेढ़ी-मेढ़ी पतली सड़क है। दाहिनी तरफ है जंगलसे ढकी खाई। इस सड़कका अन्तिम लक्ष्य है अमितका वह मकान जिसमें वह ठहरा हुआ है। वहाँ यात्रियोंकी आनेकी संभावना कतई नहीं, इसलिए वह आवाज बगैर किये ही असावधानीके साथ गाड़ी बढ़ाये चला जा रहा था। ठीक उसी समय वह सोच रहा था, 'आधुनिक कालमें दूर-देशकी प्रेयसीके लिए मोटर-दूत ही सबसे अच्छा है और प्रशस्त है।' उसमें 'धूमज्योतिःसलिल-मरुतां सन्निवेशः' काफी और ठीक नाप-तोलमें है, और, चालकके हाथमें एक पाती दे देनेसे फिर तो कुछ अस्पष्ट रह ही नहीं जाता। उसने तय कर लिया कि अगले साल आषाढ़के प्रथम दिवसमें ही मेघदूत-वर्णित मार्गसे ही वह मोटरपर यात्रा करेगा। हो सकता है कि अदृष्टने उसकी बाट देखते हुए 'देहलीदत्तपुष्पा' जिस पथिक-वधूको अब तक बिठा रखा है वह, अवन्तिका हो चाहे मालविका या हिमालयकी कोई देवदारु-वन-चारिणी ही हो, उसे शायद किसी एक अचिन्तनीय मौकेसे दिखाई दे भी सकती है। इतनेमें सहसा आगेके एक मोड़के पास पहुंचते ही उसने देखा कि एक और गाड़ी ऊपर चढ़ी आ रही है। उस गाड़ीके लिए एक किनारेसे निकलने की जगह नहीं थी। ब्रेक कसते-कसते गाड़ी जा पड़ी उसके ऊपर। दोनोंको आघात पहुंचा, पर अपघात किसीका नहीं हुआ। दूसरी गाड़ी जरा-सा लुढ़ककर पहाड़से जा लगी और वहीं अटककर रह गई।

एक तरुणी गाड़ीसे उतरकर सड़कपर खड़ी हो गई। सद्य मृत्युकी आशंकाका ताजा काला पट अभी तक उसके पीछे मौजूद था, मानो उसीपर वह खिल उठी विद्युत्रेखासे अङ्कित एक साफ-सुथरी तसवीर-सी, चारों तरफके सब-कुछसे बिलकुल अलग, एकदम निराली। मानो मन्दार-पर्वतसे प्रकम्पित फेनिल समुद्रमेंसे अभी-अभी उठके आई हो स्वयं लक्ष्मी, सम्पूर्ण आन्दोलनोंके ऊपर, और महासागरकी छाती मानो अभी तक फूल-फूलकर काँप रही हो। दुर्लभ अवसरमें ऐन मौकेपर अमितने उसे देखा। किसी ड्रॉइंग-रूममें यह बाला और पाँच-जनोंके बीच अपने परिपूर्ण आत्म-स्वरूप में नहीं दिखाई देती। संसारमें देखने-लायक आदमी तो शायद निल

भी जाता है, पर उसे देखने-लायक ठीक समय और ठीक स्थान नहीं मिलता।

वह पतली किनारीदार सफेद अलवानकी साड़ी और उसी अलवान की जाकेट पहने थी। पाँवोंमें थीं सफेद चमड़ेकी देशी ढाँचेकी जूतियाँ। देह छरछरी और लम्बी, रंग चिकना-साँवला, और आँखें थीं कमान-सी खिची-हुई, पलकोंकी घनी बरुनियोंकी छायासे निविड़ और स्निग्ध। प्रशस्त ललाटको मुक्त किये-हुए पीछेकी ओर खींचकर कसके बँधा-हुआ था जूड़ा, और ठोड़ीको घेरे-हुए सुकुमार मुखड़ेकी गढ़न अध-पके फलके समान थी रमणीय। जाकिटकी बाहें थीं कलाई तक लम्बी, और हाथोंमें था सोने का एक-एक पतला प्लेन कड़ा। ब्रोचके बन्धनसे मुक्त कँधेका पल्ला माथे पर चढ़कर कटकी-कामदार चाँदीके काँटेसे जूड़ेके साथ जा बँधा था।

अमितने टोपी खोलकर गाड़ीमें रख दी, और उसके सामने चुपचाप ऐसे जा खड़ा हुआ जैसे मिलनेवाली सजाका इन्तजार कर रहा हो। देख कर उस लड़कीको शायद दया आ गई, और शायद कुछ कुतूहल भी हुआ।

अमितने मुलायम स्वरमें कहा, "अपराध हो गया मुझसे।"

लड़कीने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, "अपराध नहीं, गलती है, और उस गलतीकी शुरूआत मुझ ही से हुई थी।"

लड़कीका कंठस्वर झरनेके मूलस्रोतके उत्साह और फुलावके समान परिपूर्ण और सुडौल था, कम उमरके बालकके गलेकी तरह मुलायम और प्रशस्त। उस दिन घर लौटकर अमित बहुत देर तक सोचता रहा था कि उसके स्वरमें जो एक स्वाद है, स्पर्श है, उसका वर्णन कैसे किया जाय। नोटबुक खोलकर उसने लिखा था, "मानो वह अम्बरी-तम्बाकूका हलका धुआँ हो, पानीके भीतरसे घूमता-हुआ आ रहा हो, उसमें निकोटिनकी उग्रता नहीं, गुलाब-जलकी स्निग्ध सुगन्ध है।"

लड़कीने अपनी त्रुटिकी व्याख्या करते हुए कहा, "एक मित्रके आनेकी खबर पाकर उन्हें ढूंढ़ने निकली थी। इस रास्तेसे कुछ ऊपर चढ़ चुकनेके बाद, सोफरने कहा कि यह 'रास्ता' नहीं हो सकता। मगर तब आखिर

तक बगैर चढ़े कोई उपाय ही न था। इसीसे ऊपर आ रही थी। इतनेमें ऊपरवालेका धक्का खाना पड़ा।"

अमितने कहा, "ऊपरवालेके ऊपर भी ऊपरवाला है, एक अत्यन्त कुश्री कुटिल ग्रह। उसीकी करतूत है यह।"

दूसरे पक्षके ड्राइवरने कहा, "नुकसान ज्यादा नहीं हुआ, लेकिन गाड़ी बनकर तैयार होनेमें देर लगेगी।"

अमितने कहा, "मेरी अपराधिनी गाड़ीको अगर क्षमा कर दें, तो यह आप जहाँ आज्ञा देंगी वहीं पहुंचा दे सकती है।"

"इसकी जरूरत नहीं, पहाड़पर पैदल चलनेकी आदत है मुझे।"

"जरूरत मुझ ही को है। मुझे माफ कर दिया, इसका सबूत ?"

लड़की कुछ दुविधामें पड़कर चुप रह गई। अमितने कहा, "मेरी तरफसे और भी एक बात है। मैं गाड़ी हाँकता हूँ, यह कोई खास महत्त्वका काम नहीं। इस गाड़ीमें चढ़कर पॉस्टैरिटी तक नहीं पहुंचा जा सकता, आगेकी पीढ़ियों तक पहुँचनेका यह रास्ता नहीं। फिर भी, शुरू-शुरूमें यही एकमात्र परिचय पाया है आपने मेरा। और सो भी, ऐसी तकदीर मेरी कि उसमें भी गलती ! अब उपसंहारमें अब मुझे इतना तो दिखा देने दीजिये कि संसारमें कम-से-कम आपके सोफरमें तो मैं अयोग्य नहीं।"

अपरिचितके साथ प्रथम परिचयमें अज्ञात विपत्तिकी आशंकासे स्त्रियाँ अपने संकोचको नहीं हटाना चाहतीं। किन्तु विपत्तिके एक धक्केसे उपक्रमणिकाकी लम्बी दीवारका बहुत-सा हिस्सा एकाएक टूटकर गिर गया। मानो किसी दैवने इस सुनसान पहाड़ी रास्तेके बीच अचानक इन्हें खड़ा करके, दोनोंके मनमें दृष्टि-विनिमयकी गाँठ बाँध दी, जरा भी सब्र नहीं किया। आकस्मिकके विद्युत-प्रकाशमें इस तरह जो-कुछ देखनेमें आया, अकसर बीच-बीचमें रातको जाग उठनेपर वह अन्धकार-पटपर दिखाई दे जाता है। उसकी चेतनापर आजकी घटनाकी गहरी छाप पड़ गई, जैसे नील आकाशपर सृष्टिके किसी एक प्रचण्ड धक्केसे सूर्य-नक्षत्र की आगकी जली छाप लग जाती है।

मुंहसे कुछ न बोलकर वह लड़की गाड़ीमें बैठ गई। और उसके कहे मुताबिक गाड़ी यथासमय यथास्थान जा पहुँची।

लड़कीने गाड़ीसे उतरकर कहा, "कल अगर आपको समय मिले, तो एक बार यहाँ आइयेगा। मैं अपनी मालिकिन-मासे आपकी जान-पहचान करा दूंगी।"

अमितके मनमें आई कि कह दे, 'मेरे पास समयकी कमी नहीं है, अभी तुरन्त चल सकता हूँ', किन्तु संकोचसे वह कह नहीं सका।

घर लौटकर, अपनी नोट-बुक उठाकर वह लिखने बैठ गया, "रास्तेने सहसा यह कैसा पागलपन कर डाला! दोनोंको दो जगहसे तोड़ लाकर आजसे शायद दोनोंको एक ही रास्तेसे चालान कर दिया। ऐस्ट्रॉनॉमरने गलत कहा है। अज्ञात आकाशसे चाँद आ पड़ा था पृथ्वीके वातायनमें, लग गया धक्का उनकी मोटरोंमें, उस मौतकी ताड़नाके बादसे युग-युगमें दोनों एक ही साथ चल रहे हैं। इसका प्रकाश उसके मुंहपर पड़ता है और उसका प्रकाश इसके मुंहपर। चलनेका बन्धन अब टूटता ही नहीं। मनके भीतरसे कोई कह रहा है, 'हमारा युगल-चलन शुरू हो गया। हम चलने के सूतमें, क्षण-क्षणमें पड़े-पाये उज्ज्वल निमेषोंकी माला गूंथा करेंगे। अब बँधी तनखाकी बँधी-हुई खुराकीपर भाग्यकी चौखटपर पड़ा नहीं रहा जा सकता। हमारा लेन-देन सभी-कुछ सहसा हुआ करेगा।"

बाहर वर्षा हो रही है। बरामदेमें बार-बार चहलकदमी करते-करते अमित मन-ही-मन बोल उठा, 'कहाँ हो कवि निवारण! आओ, मेरे सर चढ़कर बोलो। वाणी दो मुझे, वाणी!' और चटसे उसने अपनी लम्बी पतली-सी कापी निकाल ली। निवारण चक्रवर्ती बोलता गया :—

बन्धनहीन ग्रन्थिने बाँध दिया पथका मन,
चलती हवाके हम दोनों हैं पन्थी-जन।
धूलके दुलारे क्षण, कुंकुम गुलाल डाल,
मदसे उन्मत्त मन, रँगते कपोल लाल

वर्षाके मेघोंमें उड़ाके दुपट्टा आज
नाच रही दिगङ्गना पहने रंगीन साज,
लगते ही चकाचौंध
तुरत गया चित्त औंध।

कनक-चम्पाके कुञ्ज नहीं,
वन-वीथिकामें बिछे नहीं
बकुल-पुञ्ज कहीं।
सहसा न-जाने कब मधुऋतुकी रातमें
अज्ञात पुष्प नाम-हीन
मादक सुगन्ध लिये
आया, रहा रात-भर,
होते ही प्रात-काल उपेक्षाकी दृष्टि डाल
प्राचीके अरुण मेघ
उसने कर दिये तुच्छ,
देखो शाखा-शिखरोंपर
उद्धत हैं रॉडोडेनड्रन-गुच्छ।

नहीं धन-रत्नका संचय कहीं,
घरके लाड़-प्यारका परिचय नहीं।
पथके किनारे देख लो उस पेड़पर
चिड़िया नचाती पूंछ,
निश्चय नदारत मूंछ,
पिंजड़ेमें न करना कभी उसे बन्द
चाहे उड़ना तो उड़ जाय, है सुछन्द।
डैना पसारे प्रिय मुक्तिके गुन गा रही,
राग मुक्तिका सुना रही।

अब एक बार पीछेकी ओर देख लेना भी जरूरी है। पिछली बातें पूरी कर ली जायें तो सामने बढ़नेमें कोई रुकावट न आयेगी।

३— पूर्व भूमिका

खासकर बंगालमें, अंग्रेजी शिक्षाके पहले दौरमें, चण्डीमंडपकी पुरानी आब-हवाके साथ स्कूल-कालेजकी नई आब-हवाकी गरमीका जो जबरदस्त वैषम्य और संघर्ष दिखाई दिया, उसमें समाज-विद्रोहका एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ, और उसके चंगुलमें फँसना पड़ा ज्ञानदाशंकरको। वैसे वे पुराने जमानेके ही आदमी थे, पर उनके मामलेकी तारीख सहसा फिसल कर आ पड़ी थी नये जमानेके पास। वे अपनी मियादसे पहले ही पैदा हो गये। बुद्धिमें बातचीतमें व्यवहारमें वे अपनी उमरके लोगोंसे कहीं आगे निकल आये थे। समुद्रकी लहरोंसे खेलनेवाले पक्षीकी तरह लोक-निन्दाके थपेड़े छाती खोलकर सह लेनेमें ही उन्हें आनन्द मिलता था।

इस तरहके सभी बाबाओंके नाती-पोते जब इस तरहकी तारीख पड़नेके खिलाफ आवाज उठाकर उसके संशोधनकी कोशिश करते हैं, तो वे एक ही दौड़में पत्राके एकदम उलटी तरफके टर्मिनसमें पहुंच जाते हैं। यहाँ भी वही बात हुई। ज्ञानदाशंकरके नाती बरदाशंकर अपने पिताकी मृत्युके बाद, युगके हिसाबसे, करीब-करीब बाप-दादोंके आदिम पूर्वपुरुष हो उठे। वे मनसादेवीके भी हाथ जोड़ते और शीतलादेवीको भी माता कहकर शान्त रखना चाहते। यहाँ तक कि उन्होंने ताबीज धोकर पानी पीना भी शुरू कर दिया, और एक हजार आठ बार 'दुर्गा' नाम लिखते-लिखते उनका लगभग एक-तिहाई दिन बीत जाता। उनके इलाकेमें जो वैश्य-दल अपना द्विजत्व प्रमाणित करनेके लिए सिर हिलाकर उठके खड़ा हुआ था उसे भी भीतर-बाहर सभी तरफसे विचलित कर दिया गया, और हिन्दुत्वकी रक्षाके उपायोंको विज्ञानके स्पर्श-दोषसे बचानेके लिए भाटपाड़ाके महापण्डितोंकी सहायतासे असंख्य ऋषि-वाक्य

पम्फलेटके रूपमें छपाकर, उन्हें आधुनिक वुद्धिकी खोपड़ीपर विना-मूल्य वरसानेमें भी कोई कंजूसी नहीं की गई। वहुत ही थोड़े समयके अन्दर उन्होंने क्रिया-कर्म, जप-तप, आसन-आचमन, स्नान-ध्यान, धूप-धूना और गऊ-ब्राह्मणोंकी सेवासे शुद्धाचारका खूब मजवूत और निश्छिद्र दुर्ग अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया। अन्तमें गो-दान, स्वर्ण-दान, भूमि-दान और कन्या-दान पितृ-दाय मातृदाय दूरीकरण आदिके वदलेमें असंख्य ब्राह्मणोंके अशेष आशीर्वाद ग्रहण करके जव वे लोकान्तरको सिधारे तव उनकी उमर थी सिर्फ सत्ताईस सालकी।

वरदाशंकरकी स्त्री थीं योगमाया, जो कि उन्हींके पिताके परम मित्र, एकसाथ एक ही कालेजमें पढ़े-हुए और एकसाथ एक ही होटलमें चॉप काटलेट खाये-हुए रामलोचन वनर्जीकी कन्या थीं। जव यह व्याह हुआ था तव योगमायाके पितृकुलके साथ पतिकुलका वर्णभेद नहीं था। अव तो उनके मायकेकी लड़कियाँ पढ़ती-लिखती भी हैं, वाहर भी निकलती हैं, यहाँ तक कि उनमेंसे किसी-किसीने मासिकपत्रमें सचित्र भ्रमण-वृत्तान्त भी लिखा है। ऐसे घरानेकी लड़कीके शुद्धाचरण और धार्मिक संस्कारोंमें कहीं कोई अनुस्वार-विसर्गकी भी भूल-चूक न रह जाय, इसकी देखभालमें लग गये स्वयं उनके पतिदेव वरदाशंकर। सनातन-सीमान्त-रक्षाकी नीतिके अटल शासनसे योगमायाकी गतिविधि विविध पासपोर्ट-प्रणालियों द्वारा नियंत्रितकी जाने लगी। उनका घूंघट उतर आया आँखों तक, वल्कि मन तक भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। देवी सरस्वती जव किसी अवकाशमें इनके अन्तःपुरमें प्रवेश करतीं तव ड्योढ़ीके पहरेपर उन्हें भी नंगाझोरी दे आनी पड़ती थी। उनके हाथकी अंग्रेजी कितावें वाहर ही जव्त हो जाती थीं। वंकिम-युग या उसके वादका साहित्य अगर फाटक पर पकड़ जाता, तो वह देहली पार नहीं कर सकता था। योगवाशिष्ठ और रामायणके वंगला अनुवादोंकी वढ़ियासे वढ़िया जिल्दें योगमायाकी अलमारीमें पड़ी-पड़ी वहुत दिनोंसे प्रतिक्षा कर रही हैं। अवसर-विनोदनके लिए कभी-न-कभी उस विषयकी वे आलोचना करेंगी, ऐसा एक आग्रह

इस घरके अधिकारियोंके मनमें अन्त तक बना ही रहा। पर उस पौराणिक युगके लोहेके संदूकके अन्दर अपनेको सेफ-डिपॉजिटकी तरह खूब हिफाजत के साथ रख देना योगमायाके लिए आसान नहीं था, फिर भी अपने विद्रोही मनको उन्होंने भरसक अपने काबूमें ही रखा। इस मानसिक घिरावके बीच उनके लिए एकमात्र शरण थे पंडित दीनशरण वेदान्तरत्न, इस घरानेके सभा-पंडित। योगमायाकी स्वाभाविक स्वच्छ बुद्धि उन्हें बहुत ही अच्छी लगी थी। वे स्पष्ट ही कहा करते थे, "बेटी, यह सब क्रिया-कर्मका जंजाल तुम्हारे लिए नहीं है। जो लोग मूढ़ हैं वे सिर्फ अपने-आपको ही ठगते हों सो बात नहीं, बल्कि दुनिया-भरका सभी-कुछ उन्हें ठगता रहता है। तुम क्या समझती हो कि हम इन शास्त्रोंकी बातपर पूरा विश्वास करते हैं? देखती नहीं तुम, विधान देते समय हमलोग आवश्यकता समझकर शास्त्र-विधानको व्याकरणके दाँव-पेचसे उलटने-पलटनेमें कोई खास दुःख अनुभव नहीं करते? इसके मानी यह हुए कि मनके भीतर हम बन्धन नहीं मानते, बाहरसे हमें मूढ़ बनना पड़ता है, मूढ़ोंकी खातिर। तुम खुद जबकि अपनेको भुलावेमें नहीं डालना चाहतीं तो तुम्हें भरमानेका काम हमसे कैसे हो सकता है? जब भी कभी तुम्हारी इच्छा हो समझने-जानने की, तभी तुम मुझे बुलवा लिया करना, बेटी। मैं जिसे सत्य समझता या जानता हूँ वही तुम्हें शास्त्रोंमेंसे सुना जाऊँगा।"

किसी-किसी दिन वे खुद इनके घर आकर योगमायाको कभी 'गीता' और कभी 'ब्रह्मभाष्य'मेंसे व्याख्या करके समझा जाते। योगमाया कभी कभी बुद्धिपूर्वक ऐसे-ऐसे प्रश्न करतीं कि वेदान्तरत्न महाशय पुलकित हो उठते। योगमायाके साथ आलोचना करनेमें उनके उत्साहकी सीमा न रहती। बरदाशंकरने योगमायाके चारों तरफ छोटे-बड़े जितने भी गुरु और गुरुतरोंको जुटा रखा था, उनके प्रति वेदान्तरत्न महाशयको बड़ी भारी अवज्ञा थी। वे योगमायासे कहा करते थे, "बेटी, सारे शहरमें सिर्फ एक तुम्हारे ही साथ बात करके मैं सुखी होता हूँ। तुमने मुझे आत्म-धिक्कारसे बचा लिया।"

इस प्रकार, पत्रामें वर्णित व्रत-उपवास आदिकी जंजीरसे बँधे-हुए विना छुट्टीके दिन किसी कदर कट गये। शुरूसे आखिर तक उनका साराका सारा जीवन ऐसा हो उठा, जिसे आजकलकी विचित्र बंगला अखबारू भाषामें कहा जा सकता है 'वाव्यता-मूलक'।

पतिकी मृत्युके वाद ही योगमाया अपने पुत्र यतिशंकर और पुत्री सुरमाको लेकर वाहर निकल पड़ीं। अव वे जाड़ोंमें रहतीं हैं कलकत्ते, और गरमियोंमें चली जाती हैं किसी ठंडे पहाड़पर। यतिशंकर अभी कालेजमें पढ़ रहा है, किन्तु सुरमाको पढ़ाने-लायक कोई कन्या-विद्यालय पसन्द न आनेसे उन्होंने वड़ी खोजके वाद लावण्यलताको ढूंढ़ निकाला है। और उसी लावण्यके साथ आज सवेरे अचानक अमितकी भेंट हो गई।

४—लावण्यका इतिहास

लावण्यके वाप अवनीश दत्त उत्तर-प्रदेशमें किसी कालेजके प्रिन्सिपल थे। मातृहीन लड़कीको उन्होंने इस तरह पाल-पोसकर वड़ा किया था कि वहुत परीक्षा पास करनेकी माजा-घसी भी उसकी विद्या-वुद्धिको कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकी। यहाँ तक कि अव भी उसका पढ़नेका अनुराग प्रवल है।

वापको एकमात्र शौक था विद्याका, और लड़कीमें उनका वह शौक सम्पूर्णतः परितृप्त हो गया। वे अपनी लाइब्रेरीसे भी लड़कीको ज्यादा प्यार करते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि ज्ञानकी चर्चासे जो मन ठोस हो जाता है, फिर वहाँ ऐसी दरारें रह ही नहीं जातीं जहाँसे उड़नेवाली चिन्ताकी गैस ऊपर उठ सके। ऐसे आदमीके लिए व्याह करनेकी जरूरत नहीं होती। उनकी यह भी धारणा थी कि उनकी लड़कीके मनमें पति-सेवाके आवाद होने लायक जो नरम जमीन वाकी रह सकती थी वह गणित और इतिहासकी सीमेन्टसे पक्की हो गई है, और खूब मजबूत पक्के मनके लिए

यह कहा जा सकता है कि बाहरसे चोट या खरोंच लगनेसे उसपर दाग नहीं पड़ सकता। उन्होंने यहाँ तक सोच रखा था कि लावण्यका व्याह न हुआ तो न सही, पाण्डित्यके साथ ही हमेशाके लिए उसका गठबन्धन हुआ रहेगा तो क्या बुराई है।

उनके और भी एक स्नेहका पात्र था। उसका नाम है शोभनलाल। कम उमरमें पढ़नेकी तरफ इतना ध्यान और-किसीमें देखनेमें नहीं आता। प्रशस्त ललाट, आँखोंमें भावोंकी स्वच्छता, ओठोंके भावमें सौजन्य, हँसीके भावमें सरलता और मुंहके भावमें सुकुमारता ऐसी है कि उसका चेहरा देखते ही मन उसकी तरफ खिंच ही जाता है। लड़का निहायत मुंहचोर है, उसकी तरफ जरा-सा ध्यान देते ही वह व्यग्र-सा हो उठता है।

वह गरीबका लड़का है, और छात्रवृत्तिकी सीढ़ियोंके सहारे दुर्गम परीक्षाके शिखर पार करता हुआ आगे बढ़ रहा है। भविष्यमें शोभन अपना नाम कर सकेगा, और उस ख्यातिको गढ़के तैयार करनेवाले कारीगरों की सूचीमें अवनीशका नाम सबसे ऊपर रहेगा, इस बातका गर्व अध्यापकके मनमें मौजूद था। शोभन उनके घर पाठ लेने आया करता था, और उनकी लाइब्रेरीमें उसका अबाध संचरण था। लावण्यको देखकर वह मारे संकोच के गड़-गड़ जाता। संकोचके इस अति-दूरत्वके कारण लावण्यके लिए अपने आपको शोभनलालसे बड़ा करके देखनेमें कोई बाधा नहीं थी। दुविधामें पड़कर जो पुरुष यथेष्ट जोरके साथ अपनेको प्रत्यक्ष नहीं कराता, स्त्रियाँ उसे यथेष्ट स्पष्टतासे प्रत्यक्ष नहीं करतीं।

इतनेमें एक दिन शोभनलालके बाप नवनीगोपाल अवनीशके घरपर चढ़ाई करके उन्हें खूब एक चोट जली-कटी सुना गये। शिकायत यह थी कि 'अवनीशने अपने घरपर पढ़ानेका बहाना करके व्याहके लिए लड़का फाँसनेका जाल बिछा रखा है, वे वैद्य-जातिके लड़के शोभनलालकी जात बिगाड़कर समाज-सुधारका शौक मिटाना चाहते हैं।' इस अभियोगके प्रमाण-स्वरूप उन्होंने पेन्सिलसे अंकित लावण्यलताकी एक तसवीर पेश की। तसवीर बरामद हुई थी शोभनलालके टीनके ट्रङ्कमेंसे, उसमें वह

गुलावकी पंखड़ियोंसे ढकी पड़ी थीं। नवनीगोपालको इसमें जरा भी संदेह नहीं था कि यह चित्र लावण्यकी तरफसे प्रणयका दान है। पात्रके हिसावसे शोभनलालका वाजार-भाव कितना ऊँचा है, और, और-कुछ दिन सत्र किये वैठे रहनेसे वह कीमत कितनी ज्यादा वढ़ जायगी, यह वात नवनीगोपालके हिसावी दिमागमें पाई-पाईके हिसावसे मिली-मिलाई रखी थी। ऐसी कीमती चीजपर अवनीश मुफ्तमें ही दखल जमानेका फन्दा डाल रहे हैं; इसे सेंध मारकर चोरी करनेके सिवा और क्या नाम दिया जा सकता है? धन-दौलतकी चोरीमें और इसमें लेशमात्रका फर्क है कहाँ? अव तक लावण्यको इस वातका पता ही न था कि किसी छिपी हुई वेदीपर श्रद्धाहीन लोक-दृष्टिके आगोचरमें उसकी मूर्ति-पूजा प्रचलित हो गई है। अवनीशकी लाइब्रेरीके एक कोनेमें नाना प्रकारके पैम्फ्लेट मैगजिन आदिके कूड़े-करकटमें, सम्हालकी कमीसे मलिन, लावण्यलताका एक फोटोग्राफ दैवसे शोभनलालके हाथ पड़ गया था। और उससे उसने अपने किसी आर्टिस्ट मित्रके हाथसे एक कलापूर्ण चित्र वनवा लिया था, और उस फोटोग्राफको फिर जहाँका तहाँ रख दिया था। और गुलाव-फूल भी उसके तरुण मनके सलज्ज गुप्त प्रेमकी तरह ही सहज स्वाभाविक रूपसे खिले थे एक मित्रके वगीचेमें। उसमें किसी अधिकारके औद्धत्यका कोई इतिहास नहीं था। फिर भी सजा उसे भुगतनी ही पड़ी। और, यह लाजुक लड़का शोभन सिर झुकाये, सुर्ख चेहरा लिये, छिपाकर अपने आँसू पोंछता हुआ इस घरसे विदा हो गया। दूरसे उसने अपने आत्म-निवेदनका एक शेष परिचय दिया, और उसका विवरण सिवा एक अन्तर्यामीके और कोई जान ही न सका। वी०ए० की परीक्षामें जव कि उसने प्रथम स्थान पाया था, लावण्यने तव तृतीय स्थान प्राप्त किया था। इस घटनाने लावण्यको वहुत ज्यादा आत्म-लघुताका दुःख दिया। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि शोभनलालकी वुद्धिपर अवनीशकी अत्यन्त श्रद्धा थी, जिसने लावण्यको वहुत दिनों तक चोट पहुंचाई थी। इस श्रद्धाके साथ अवनीशका विशेष स्नेह घुल-मिल जानेसे उसकी व्यथा और

भी बढ़ गई थी। परीक्षा-फलमें शोभनसे आगे बढ़ जानेके लिए उसने जी-जानसे खूब कोशिश की थी। फिर भी शोभन जब उससे आगे बढ़ गया, तो इस स्पर्धाके लिए उसे क्षमा करना ही कठिन हो गया। लावण्यके मनमें कैसा तो एक सन्देह-सा बना रहा कि उसके पिता शोभनकी खास तौर से सहायता करते रहते हैं, इसीसे दोनों परीक्षितोंके नतीजेमें इतना फर्क हुआ है। और, मजा यह कि परीक्षाके पाठके विषयमें शोभन किसी भी दिन अवनीशके सामने नहीं गया। कुछ दिन तक तो ऐसा रहा कि शोभनके साथ प्रतियोगितामें लावण्यके जीतनेकी कोई उम्मीद ही नहीं थी। फिर भी उसीकी जीत हुई। और तो और, स्वयं अवनीश भी दंग रह गये। शोभनलाल अगर कवि होता तो शायद वह भर-भर कापी कविता लिखा करता, किन्तु उसके बदले उसने परीक्षा-पास करनेके अपने बड़े-बड़े मार्क-पुष्प लावण्यके लिए उत्सर्ग कर दिये।

उसके बाद, इन दोनोंकी छात्र-दशा जाती रही। इतनेमें सहसा, अवनीशको अपनी सख्त बीमारीमें, अपने आपमें ही इस बातका प्रमाण मिल गया कि 'ज्ञानकी चर्चासे मन ठसाठस भरा रहनेपर भी, मनसिज उसीमेंसे कहींसे सारी रोक-थाम हटा-हुटूकर उठ खड़ा होता है। उसके लिए वहां जरा भी स्थानाभाव नहीं होता।' तब अवनीशकी उमर थी सैंतालीस वर्षकी। उस अत्यन्त दुर्बल निरुपाय उमरमें कहींसे एक विधवा उनके हृदयमें प्रवेश कर गई, एकदम उनकी लाइब्रेरीके ग्रन्थ-व्यूह को भेदकर, उनके पण्डित्यकी चहारदीवारीको लांघकर। उससे व्याह करनेमें और कोई बाधा नहीं थी, सिर्फ एक बाधा थी लावण्यके प्रति उनकी ममता। इच्छाके साथ बड़ी-भारी लड़ाई शुरू हो गई। पठन-पाठन वे खूब जोरके साथ करना चाहते, किन्तु ऐसी एक चमत्कारी चिन्ता जिसमें उससे भी ज्यादा जोर था, पठन-पाठनके सर हो जाती। समालोचनाके लिए 'मॉडर्न-रिव्यू'से उनके पास नई-नई लोभनीय पुस्तकें आती रहतीं, बौद्ध-ध्वंसावशेषके इतिहास-सम्बन्धी, किन्तु अनुद्घाटित पुस्तकोंके सामने वे स्थिर बैठे रहते, उस टूटे-फूटे बौद्ध-स्तूपकी तरह जिसे सैकड़ों वर्षोंका

मौन टकटकी लगाये देखा करता है। सम्पादक व्याकुल हो उठते, वे नहीं जानते कि ज्ञानीका स्तूपाकार ज्ञान जब हिलता है तब उसकी ऐसी ही दशा हो जाया करती है। हाथी जब दलदलमें कदम रख चुकता है तब उसके बचनेका उपाय क्या है ?

इतने दिन बाद, अवनीशके मनको एक तरहका परिताप व्यथा देने लगा। उन्हें मालूम हुआ कि उन्होंने, शायद पोथीके पन्नोंसे आँख उठाकर देखनेकी फुरसत न मिलनेसे, यह नहीं देखा कि शोभनलालको उनकी लड़की प्यार करती है। कारण शोभन जैसे लड़केको प्यार न कर सकना ही अस्वाभाविक है। साधारण तौरसे बाप-जातिपर ही उन्हें गुस्सा आया, अपने ऊपर, और साथ ही नवनीगोपालपर।

इतनेमें शोभनकी एक चिट्ठी आई। प्रेमचन्द-रायचन्द-छात्रवृत्तिके लिए गुप्त-राजवंशके इतिहासके आधारपर निबन्ध लिखकर उसे वह दाखिल करना चाहता है और उसके लिए उनकी लाइब्रेरीसे उसे कुछ किताबें उधार चाहिए। उसी समय उन्होंने उसे विशेष आदरके साथ चिट्ठी लिख दी, लिख दिया, 'पहलेकी तरह मेरी लाइब्रेरीमें बैठ कर ही तुम लिखो-पढ़ो, जरा भी संकोच न करना।'

शोभनलालका मन चंचल हो उठा। उसने समझ लिया कि ऐसी उत्साहप्रद चिट्ठीके पीछे शायद लावण्यकी सम्मति छिपी हुई है। उसने लाइब्रेरीमें आना शुरू कर दिया। घरमें आने-जानेके मार्गमें दैववश कभी क्षण-भरके लिए जब लावण्यसे भेंट हो ही जाती तब शोभन अपनी गति को जरा मन्द कर देता। उसकी अत्यन्त इच्छा रहती कि लावण्य उससे कोई बात करे, पूछे कि 'कैसे हो ?' जिस निबंधके लिखनेमें वह इतना व्यस्त है उसके बारेमें कुछ दिलचस्पी जाहिर करे। अगर करती तो कापी खोलकर थोड़ी देरके लिए लावण्यके साथ आलोचना करके वह जी जाता। यह जाननेके लिए कि उसके कुछ अपने उद्भावित सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें लावण्यकी क्या राय है, उसे अत्यन्त उत्सुकता थी। पर अभी तक कोई बात ही नहीं हुई, और इतनी उसमें हिम्मत नहीं कि अपनी तरफसे चलाकर कुछ कह सके।

इसी तरह कई दिन वीत गये। उस दिन रविवार था। शोभनलाल अपने कागजात टेविलपर रखे हुए एक किताबके पन्ने उलट रहा था, और वीच-वीचमें कुछ नोट करता जाता था। दोपहरका वक्त था, और घरमें कोई था नहीं। छुट्टीके दिनका मौका देखकर अवनीश किसीके घर चले गये थे, जिसका नाम नहीं वता गये। सिर्फ इतना कह गये थे कि आज वे चाय पीने नहीं आयेंगे।

सहसा किसी समय फिरे-हुए किवाड़ खुल गये। शोभनलालकी छाती धड़क उठी, वह काँप गया। लावण्य कमरेके भीतर चली आई। शोभन घवराकर उठ वैठा, उसकी कुछ समझमें न आया कि वह क्या करे। लावण्य आग-ववूला होकर वोली, "आप क्यों आते हैं इस घरमें ?"–

शोभनलाल चौंक पड़ा, उसकी जवानपर कोई जवाव न आया।

"आप जानते हैं यहाँ आनेके वारेमें आपके पिताने क्या कहा है ? मेरा अपमान करानेमें आपको संकोच नहीं होता ?"

शोभनलालने आँखें नीची करके कहा, "मुझे माफ कीजिये, मैं अभी चला जाता हूँ।"

उससे ऐसा एक उत्तर तक नहीं दिया गया कि स्वयं उसके पिताने उसे आमंत्रण देकर वुलाया है। उसने अपने कागजात वगैरह सव इकट्ठे कर लिये। उसके हाथ थर-थर काँप रहे थे, मानो एक गूंगी व्यथा पसलीकी हड्डियोंको ढकेलकर ऊपर आना चाहती है, पर रास्ता नहीं पाती। सिर झुकाये वह चुपचाप घरसे वाहर चला गया।

जिससे वहुत ही ज्यादा प्रेम किया जा सकता था उससे प्रेम करनेका मौका अगर किसी एक वाधासे टकराकर हाथसे छूटकर गिर जाय, तो वह केवल अप्रेममें ही परिणत नहीं होता, किन्तु तव वह एक अन्ध-विद्वेषमें परिणत हो जाता है। प्रेमका ही दूसरा पहलू है वह। किसी दिन शोभनलालको वरमाला पहनानेके लिए ही लावण्य अपने अगोचरमें प्रतीक्षा किये वैठी थी। शोभनलालकी तरफसे ही शायद उसका अनुरूप उत्तर नहीं मिला। उसके वाद जो-कुछ हुआ, सव उसके विरुद्ध ही गया। सवसे ज्यादा

चोट पहुंची इस आखिरी विदाके समय। लावण्यने अपने मनके क्षोभमें आकर पिताके प्रति बहुत ही ज्यादा अन्याय किया। उसे ऐसा लगा कि उसके पिताने स्वयं छुटकारा पा जानेके खयालसे ही अपनी तरफसे जान-बूझकर शोभनलालको फिरसे बुलाया है, उन दोनोंमें मेल करानेकी कामनासे। और इसीसे ऐसा निष्ठुर क्रोध आ पड़ा बेचारे निरपराध शोभनलालपर।

इसके बाद फिर लावण्यने लगातार जिद कर-करके अवनीशका व्याह करा दिया। अवनीशने अपने संचित धनका लगभग आधा हिस्सा अपनी लड़कीके लिए अलग कर रखा था। पिताके व्याहके बाद लड़की कह बैठी कि वह पिताकी सम्पत्तिमेंसे कुछ भी नहीं लेगी, स्वाधीनतासे कमाकर अपनी गुजर करेगी। अवनीशने मर्माहत होकर कहा, "मैंने तो व्याह करना नहीं चाहा था, लावण्य, तुम्हींने तो जिद करके यह व्याह कराया है। तो फिर आज क्यों तुम मुझे इस तरह त्याग रही हो ?"

लावण्यने कहा, "हम दोनोंका सम्बन्ध क्षुण्ण न हो इसीलिए मैंने ऐसा संकल्प किया है। तुम कुछ फिकर मत करो, बापूजी। जिस मार्गमें मैं वास्तवमें सुखी होऊं उसी मार्गपर हमेशा तुम अपना आशीर्वाद बनाये रखना।"

काम उसे मिल गया। सुरमाको पढ़ानेका पूरा भार उसीपर है। यतिशंकरको भी आसानीसे पढ़ा सकती थी वह, पर महिला-शिक्षयित्री के पास पढ़नेका अपमान स्वीकार करनेको यतिशंकर किसी भी तरह राजी नहीं हुआ।

प्रतिदिनके बँधे-हुए काममें जीवन किसी तरहसे चला जा रहा था। बचा-हुआ समय ठसाठस भरा हुआ था अंग्रेजी साहित्यसे, प्राचीन कालसे शुरू करके हालके बर्नर्ड शॉके युग तक, और खासकर-ग्रीक और रोमन युगके इतिहास और ग्रोट गिबन और गिलबर्ट मरेकी रचनाओंसे। किसी-किसी अवकाशमें एक चंचल हवा आकर उसके मनके भीतर थोड़ा-बहुत उथल-पुथल न कर जाती हो ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर हवासे बढ़कर

स्थूलतर कोई व्याघात सहसा उसके भीतर घुस आ सके इतना बड़ा छिद्र उसकी जीवनयात्रामें शायद नहीं था। होनहारकी बात कि ठीक इसी समय व्याघात आ पड़ा मोटर-गाड़ीमें बैठे-बैठे, बीच रास्तेमें चलते-चलते, कोई आहट तक बगैर किये। सहसा ग्रीस-रोमका विराट इतिहास हलका हो गया, और, सब-कुछको हटाकर बहुत ही निकटके एक निविड़ वर्तमानने उसे झकझोर कर कहा, "जागो!" लावण्य एक ही क्षणमें जाग उठी, और इतने दिनों बाद अपनेको देख सकी, ज्ञानमें नहीं, वेदनामें।

५—परिचयका आरम्भ

अतीतके भग्नावशेषसे अब हमें लौट चलना चाहिए वर्तमानकी नवीन सृष्टिके क्षेत्रमें।

लावण्य अपने पढ़नेके कमरेमें अमितको बिठाकर योगमायाको खबर देने चली गई। उस कमरेमें अमित ऐसे बैठ गया जैसे कमलके बीच भौंरा आ बैठता है। वह चारों ओर देखता है तो सभी चीजोंसे एक तरहका स्पर्श-सा आ लगता है उसके मनपर, और वह उसे उदास कर देता है। अलमारीमें और पढ़नेकी टेबिलपर उसने अंग्रेजी साहित्यकी किताबें देखीं, उसे ऐसा लगा जैसे वे जिन्दा हो उठी हों। ये सब लावण्यकी पढ़ी-हुई किताबें हैं। उसकी उंगलियोंने इनके पन्ने उलटे हैं, दिन-रात इनमें उसकी विचारधारा बहा करती है, उसकी उत्सुक दृष्टि चला-फिरा करती है इन पर और अन्यमनस्क दिनोंमें ये उसकी गोदमें पड़ी रहती हैं। टेबिलपर उसने जब अंग्रेज कवि डॉनका काव्य-संग्रह पड़ा देखा तो वह चौंक उठा। ऑक्सफोर्डमें रहते-हुए डॉन और उनके समयके कवियोंके गीति-काव्य अमितके प्रधान आलोच्य विषय थे। यहाँ आज इस काव्यपर दैवसे दोनोंके मनोंने एक जगह आकर परस्परको स्पर्श किया।

बहुत दिनोंसे निरुत्सुक दिन-रातोंके दाग लग-लगकर अमितका जीवन धुंधला-सा हो गया था, मानो वह मास्टरके हाथकी स्कूलमें हर साल

पढ़ाई जानेवाली ढीली जिल्दकी टेक्स्ट-बुक हो। आनेवाले दिनके लिए कोई कुतूहल नहीं था और मौजूदा दिनका पूरे मनसे स्वागत करना उसे अनावश्यक जान पड़ता था। अब वह, अभी-अभी, एक नये ग्रहमें आ पहुंचा है। यहाँ वस्तुका भार कम है, पैर जमीन छोड़कर मानो अधर चल रहे हों, प्रतिक्षण व्यग्र होकर अचिन्तनीयोंकी तरफ बढ़ते जा रहे हों। देहसे हवा लगती और सारी देह मानो बाँसुरी हो जाना चाहती। आकाश का प्रकाश मानो रक्तमें प्रवेश करता और भीतर-ही-भीतर उसमें ऐसी एक उत्तेजनाका संचार होता जिसे वृक्षके सर्वाङ्ग-प्रवाहित रसमें फूल खिलाने की उत्तेजना कहा जा सकता है। मनके ऊपरसे न-जाने कितने दिनोंका धूल-भरा परदा उठ गया, साधारण चीजमेंसे एक असाधारणता खिल उठी। इसीसे, योगमायाने जब धीरे-धीरे घरमें प्रवेश किया तब उस बिलकुल स्वाभाविक बातमें भी अमितको आज विस्मय मालूम हुआ। उसने मन-ही-मन कहा, 'अहा, यह तो आगमन नहीं, आविर्भाव है!'

चालीसके लगभग उनकी उमर है, किन्तु उमरने उन्हें शिथिल नहीं किया, बल्कि सिर्फ एक गम्भीर शुभ्रता ही दान की है। गोरा भरा-हुआ चेहरा है और वैधव्य-रीतिसे छँटे-हुए हैं माथेके बाल। मातृभावसे भरी परिपूर्ण प्रसन्न आँखें हैं, और उसमें है स्निग्ध हँसी। मोटी सफेद चादर माथेको वेष्टन करती-हुई सारे शरीरको ढके-हुए है। पाँवोंमें जूते नहीं, दोनों पाँव निर्मल और सुन्दर हैं। अमितने पाँव छूकर जब उन्हें प्रणाम किया तो उसकी नस-नसमें मानो देवीके प्रसादकी धारा बह निकली।

प्रथम परिचयके बाद योगमायाने कहा, "तुम्हारे काका अमरेश थे हमारे जिलेके सबसे बड़े वकील। एक दफे, एक सत्यानासी मुकदमेमें हमलोग फकीर होने जा रहे थे, उन्होंने हमें बचा लिया। मुझे वे भाभी कहकर पुकारा करते थे।"

अमितने कहा, "मैं उनका अयोग्य भतीजा हूँ। चाचाने नुकसानसे बचा लिया था, और मैंने नुकसान कर दिया। आप थीं उनकी मुनाफेकी भाभी, और मेरी होंगी नुकसानकी मौसी।"

योगमायाने पूछा, "तुम्हारी मा हैं ?"

अमितने कहा, "थीं, और मौसीका होना भी अत्यन्त उचित था।"

"मौसीके लिए इतना खेद क्यों, बेटा ?"

"आप ही सोचिये न, आज अगर माकी गाड़ी तोड़ देता तो उनकी डाट-फटकारकी सीमा न रहती। कहतीं, यह गवापन है। और, गाड़ी अगर मौसीकी होती तो वे मेरी अपटुता देखकर हँस देतीं, मन-ही-मन कहतीं, लड़कपन है।"

योगमायाने कहा, "तो फिर गाड़ी मौसीकी ही सही।"

अमित उछल पड़ा। और योगमायाके पाँव छूकर बोला, "इसीलिए तो पूर्वजन्मका कर्मफल मानना पड़ता है। माकी कोखमें जन्म लिया है किन्तु मौसीके लिए तो कोई तपस्या ही नहीं करनी पड़ी। हालाँ कि गाड़ी तोड़नेको सत्कर्म नहीं कहा जा सकता, किन्तु एक ही क्षणमें देवताके वरकी तरह जीवनमें मौसी तो मिल गईं। इसके पीछे कितने युगोंका संकेत है, जरा सोचिये तो सही !"

योगमायाने हँसकर कहा, "पर कर्मफल किसका, बेटा ? तुम्हारा या जो मोटर-मरम्मतका रोजगार करते हैं उनका ?"

अपने घने बालोंमें पीछेकी ओर उंगलियाँ चलाते-हुए अमितने कहा, "बड़ा कड़ा सवाल है यह। कर्म अकेलेका नहीं, सारे विश्वका है। एक नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें उसीकी सम्मिलित धारा युग-युगसे चलकर शुक्रवार को ठीक नौ बजके अड़तालीस मिनटके वक्त लगा एक धक्का। उसके बाद ?"

योगमाया लावण्यकी तरफ कनखियोंसे देखकर जरा हँस दीं। अमित के साथ काफी परिचय होते-न-होते ही वे तय कर बैठीं कि इन दोनोंका ब्याह होना ही चाहिए। और, इसी बातको ध्यानमें रखकर उन्होंने कहा, "बेटा, तुम दोनों यहाँ बैठे बातचीत करो, तब तक मैं तुम्हारे खाने-पीनेका इन्तजाम कर आऊँ।"

और वे भीतर चली गईं।

तेज तालसे बातचीत जमानेकी शक्ति है अमितमें। उसने चटसे शुरू कर दिया, "मौसीजीने हमलोगोंको बातचीत करनेकी आज्ञा दे दी है। शुरू होना चाहिए नामसे, पहले उसको पक्का कर लेना ठीक होगा। आप मेरा नाम तो जानती हैं न? अंग्रेजी व्याकरणमें जिसे प्रॉपरनेम कहते हैं।"

लावण्यने कहा, "मैं तो जानती हूँ आपका नाम अमित बाबू है।"

"पर यह नाम सभी क्षेत्रोंमें नहीं चलता।"

लावण्यने हँसकर कहा, "क्षेत्र अनेक हो सकते हैं, पर अधिकारीका नाम तो एक ही होना चाहिए।"

"आप जो बात कह रही हैं वह इस जमानेकी बात नहीं है। देश-काल-पात्रमें भेद हो और नाममें कोई भेद न हो, यह अवैज्ञानिक है। मैंने तय किया है कि 'रिलैटिविटी ऑफ नेम्स' (नामोंकी आपेक्षिकता) का प्रचार करके मैं नामवर होऊँगा। उसके प्रारम्भमें ही जता देना चाहता हूँ कि आपके मुंहसे मेरा नाम 'अमित-बाबू' न होगा।"

"आप साहबी कायदा पसन्द करते हैं? – मिस्टर रॉय।"

"एकदम समुद्रके उस पारका बहुत ही दूरका नाम है यह। नामका फासला ठीक करनेके लिए नापके देखना चाहिए कि शब्दको कानके तोरण द्वारसे मनके अन्तःपुर तक पहुँचनेमें कितनी देर लगती है।"

"आखिर वह द्रुतगामी नाम है कौन-सा, सुनूं भी तो?"

"द्रुत गमनके लिए उसे बोझ घटाना पड़ेगा। अमित बाबूके 'बाबू' को निकाल दीजिये।"

लावण्यने कहा, "आसान नहीं, समय लगेगा।"

"समय सबके लिए समान नहीं लगना चाहिए। 'एक-घड़ी' नामकी कोई चीज नहीं, 'जेब-घड़ी' जरूर है, और जेबके माफिक ही उनकी चाल होती है। आइनस्टाइनका यही मत है।"

लावण्य उठके खड़ी हो गई, बोली, "लेकिन आपके नहानेका पानी ठंडा हुआ जा रहा है।"

"ठंडे पानीको मैं शिरोधार्य कर लूंगा अगर वातचीतके लिए और भी जरा समय दें।"

"समय अब नहीं है।"– कहकर लावण्य भीतर चली गई।

अमित उसी समय उठकर नहाने नहीं गया। लावण्यकी मन्द-मन्द मुसकराहट उसके प्रत्येक शब्दपर कैसा लालित्य और कैसा माधुर्य वरसा रही थी, वैठा-वैठा उसीकी याद करने लगा वह। उसने वहुत-सी सुन्दरी लड़कियोंको देखा है, उनका सौन्दर्य पूनोंकी रातकी तरह उज्ज्वल होते हुए भी आच्छान्न-सा है। पर, लावण्यका सौन्दर्य प्रातःकालके समान प्रसन्न और ताजा है, उसमें अस्पष्टताका मोह नहीं, मानो उसका सव-कुछ वुद्धिसे परिव्याप्त है। उसे स्त्रीके रूपमें गढ़ते समय विधाताने उसमें थोड़ा-सा पुरुषका भाग भी मिला दिया है। उसे देखते ही ऐसा मालूम होता है कि उसमें केवल वेदनाकी ही शक्ति नहीं, वल्कि साथ ही मननकी भी शक्ति है। और खासकर इसी वातने अमितको इस तरह आकर्षित किया है। अमितमें वुद्धि है किन्तु क्षमा नहीं, विचार है किन्तु धैर्य नहीं। उसने वहुत-कुछ जाना है, सीखा है, किन्तु शान्ति नहीं पाई। लावण्यके चेहरेपर उसने ऐसा एक शान्तिका रूप देखा है जो हृदयकी तृप्तिसे नहीं किन्तु उसकी विवेचना-शक्तिकी गभीरतासे अचंचल है।

६—नया परिचय

अमित मिलनसार और गप-पसंद आदमी ठहरा। प्रकृतिके सौन्दर्यसे उसका ज्यादा देर तक काम नहीं चल सकता। हमेशा कुछ-न-कुछ वकते रहना उसकी आदतमें शुमार है। पेड़-पौधों और पहाड़-पहाड़ियोंके साथ हँसी-मजाक नहीं चल सकता, उनके साथ किसी तरहका उलटा व्यवहार करनेसे मार खानी पड़ती है, क्योंकि वे खुद नियमसे चलते हैं और दूसरोंसे भी नियमकी पावन्दी पसन्द करते हैं। एक वाक्यमें कहा जाय तो यों कहना

चाहिए कि वे अरसिक हैं। और यही वजह है कि शहरके बाहर अमितका जी हांफने लगता है।

परन्तु अचानक न-जाने क्या हो गया कि शिलांग-पहाड़ चारों तरफसे अमितको अपने रसमें पागे ले रहा है। आज वह सूर्योदयके पहले ही उठा है, और यह उसके स्वधर्मके विरुद्ध है। खिड़कीमेंसे देखा कि देवदार पेड़ की झालरें कांप रही हैं, और उसके पीछे पतले बादलोंके ऊपरसे, पहाड़के उस पारसे, सूर्यने अपनी कूचीसे लम्बी-लम्बी सुनहली रेखाएँ खींच दी हैं। आगमें-जले रंगोंकी जो आभाएँ खिल उठी हैं उनके सम्बन्धमें चुप रहनेके सिवा और कोई उपाय ही नहीं।

झटपट एक प्याला चाय पीकर अमित घरसे निकल पड़ा। रास्ता तब बिलकुल सुनसान था। एक बहुत ही पुराने काई-शुदा पाइनके पेड़के नीचे स्तर-स्तरमें झड़े-जमे पत्तोंके विस्तरपर वह पैर फैलाके बैठ गया। एक सिगरेट सुलगाकर बहुत देर तक उसे वह दो उंगलियोंमें दबाये रहा, कश लगाना भूल गया।

योगमायाके घरके रास्तेमें यह जंगल पड़ता है। ज्योनारमें बैठनेके पहले रसोई-घरसे जैसे पकवानोंकी पेशगी महक मिला करती है, ठीक वैसे ही इस जगहसे अमित योगमायाके घरका सौरभ भोगा करता है। समय घड़ीके भद्र दागपर पहुँचते ही वह उनके घर जाकर एक प्याला चायकी मांग पेश करेगा। पहले वहां जानेका उसका समय निर्धारित था शामको। साहित्य-रसिक होनेकी ख्यातिके सहारेसे उसे आलोचनाके लिए वहां स्थायी निमन्त्रण मिल गया था। शुरू-शुरूमें दो-चार दिन योगमायाने इस आलोचना में अपना उत्साह प्रकट किया था, किन्तु बादमें योगमायाको भास गया कि इससे इस पक्षके उत्साहको कुछ बाधा ही पहुंचती है। यह समझना कठिन नहीं कि इसका कारण है द्विवचनकी जगह बहुवचनका प्रयोग। इसके बादसे योगमायाके अनुपस्थित रहनेके कारण बार-बार आते रहते। जरा-सा विश्लेषण करते ही समझ लिया गया कि वे कारण अनिवार्य नहीं, दैवकृत भी नहीं, इच्छाकृत हैं, और यह प्रमाणित हो गया कि माताजीने इन दोनों

आलोचना-परायणोंमें जो अनुराग देखा है वह साहित्यानुरागसे जरा-कुछ विशेष गाढ़ा है। अमितने समझ लिया कि मौसीकी उमर जरूर कुछ ज्यादा हो गई है, पर दृष्टि तीक्ष्ण है, और साथ ही मन बना हुआ है कोमल। इसी से आलोचनाका उत्साह उसका और भी प्रबल होता गया। निर्दिष्ट समयको प्रशस्ततर करनेके अभिप्रायसे यतिशंकरके साथ उसने समझौता कर लिया कि उसे वह सवेरे एक घंटे और शामको दो घंटे अंग्रेजी साहित्य पढ़ाने में उसकी सहायता किया करेगा। और शुरू कर दी सहायता, इतने बाहुल्य के साथ कि अकसर सवेरा ढुलक जाया करता दोपहर तक, और सहायता लुढ़क जाया करती फालतू बातोंमें, और, अन्तमें योगमाया और भद्रताके अनुरोधसे दोपहरका खाना जरूरी कर्तव्यमें शामिल हो जाता। इस तरह देखा जाता कि जरूरी कर्तव्यकी परिधि पहर-पहरमें क्रमशः बढ़ती ही जाती।

यतिशंकरको पढ़ानेकी बात थी सवेरे आठ बजे। पर उसकी प्रकृतिस्थ अवस्थाके लिए वह था असमय। वह कहता, 'जिस जीवकी गर्भ-वासकी मियाद दस महीने है उसके सोनेकी मियाद पशु-पक्षियोंके मापसे नहीं मिल सकती।' अब तक अमितके रातके समयने उसके सवेरेके बहुतसे घंटोंको समेटके बगलमें दबा रखा था। उसका कहना है, 'यह चुराया-हुआ समय अवैध होनेके कारण ही नींदके लिए सबसे ज्यादा अनुकूल है।'

किन्तु आजकल उसकी नींद विशुद्ध नहीं रही। उसके अन्दर जल्दी उठनेका आग्रह बना रहता। आवश्यकताके पहले ही नींद खुल जाती। और फिर करवट बदलकर सोनेकी हिम्मत नहीं होती, इस डरसे कि कहीं देर न हो जाय। बीच-बीचमें उसने घड़ीका काँटा आगे बढ़ा दिया है, पर समयकी चोरीका अपराध कहीं पकड़ा न जाय इस डरसे बार-बार ऐसा करना संभव न हुआ। आज एक बार उसने घड़ीकी तरफ देखा, देखा कि दिन अभी सात बजेके इसी पार है। उसे ऐसा लगा कि घड़ी जरूर बन्द पड़ी है। पर घड़ी कानसे लगाई तो टिकटिक शब्द सुनाई दिया।

इतनेमें सहसा चौंकके देखा कि दाहिने हाथमें छतरी हिलाती हुई ऊपरके रास्तेसे लावण्य आ रही है। सफेद साड़ी है, पीठपर काले रंगका तिकोना दुशाला पड़ा है, और उसमें काली झालर लटक रही है। अमित समझ गया कि लावण्यकी आधी दृष्टिने उसे मालूम कर लिया है, किन्तु सम्पूर्ण दृष्टिसे मुकाबलेमें उसे कबूल करनेको वह राजी नहीं। घुमावके पास तक ज्यों ही लावण्य पहुंची नहीं कि फिर अमितसे रहा न गया, दौड़ा-दौड़ा उसके सामने जा खड़ा हुआ। बोला, "जानती थीं कि बच नहीं सकतीं, फिर भी मुझसे दौड़ करा ही ली। जानती नहीं क्या कि दूर चले जानेसे कितनी असुविधा होती है?"

"काहेकी असुविधा?"

अमितने कहा, "जो अभागा पीछे पड़ा रह जाता है उसका जी जोरसे पुकारना चाहता है। पर पुकारूं क्या कहकर? देव-देवियोंके विषयमें इतनी तो सुविधा है कि नाम लेकर पुकारनेसे वे प्रसन्न रहते हैं। 'दुर्गा दुर्गा' कहके गर्जन करनेपर भी भगवती दशभुजा असन्तुष्ट नहीं होतीं। पर आपलोगोंके विषयकी बड़ी मुसीबत है।"

"पुकारा ही न जाय तो किस्सा खतम।"

"बिना सम्बोधनके ही काम चला लेता हूं जब पास रहती हैं तब। इसीसे तो कहता हूं कि दूर न जाया करें। पुकारना चाहता हूं, पर पुकार नहीं सकता, इससे बढ़कर और कोई दुःख ही नहीं।"

"क्यों? विलायती कायदा तो आपको मालूम ही है।"

"मिस डाट्? सो तो चायकी टेबिलपर। देखिये न, आज इस आकाशके साथ पृथ्वी जब सवेरेके प्रकाशमें मिली, तो उस मिलनके लग्नको सार्थक करनेके लिए दोनोंने मिलकर एक रूपकी सृष्टि की, और उसीमें रह गया स्वर्ग-मर्त्यका रोजमर्राका प्रचलित नाम। अनुभव नहीं कर रहीं क्या, एक नाम लेकर पुकारना ऊपरसे नीचे आ रहा है और नीचेसे ऊपर जा रहा है? मनुष्यके जीवनमें भी क्या ऐसा नाम सृष्टि करनेका समय नहीं उपस्थित होता? कल्पना कीजिये न, मानो अभी मैंने जी खोलकर

मुक्त कंठसे आपको पुकारा है, नामकी पुकार सम्पूर्ण वनमें ध्वनित हो उठी है और वह आकाशके उस रंगीन वादलोंके पास तक जा पहुँची है, और सामनेका वह पहाड़ उसे सुनकर माथेसे वादल लपेटकर खड़ा-खड़ा न-जाने क्या-क्या सोचने लगा। और तव आप कल्पना भी कर सकती हैं क्या कि मेरी उस पुकारकी ध्वनि होगी 'मिस डाट्' ?"

लावण्य इस वातको टालती हुई वोली, "नामकरणमें समय लगता है, फिलहाल चलिये जरा चहलकदमी कर ली जाय।"

अमित उसके साथ हो लिया, वोला, "चलना सीखनेमें भी आदमीको देर लगती है, पर मेरे लिए उलटी वात हो गई, इतने दिनों वाद यहाँ आकर मैंने वैठना सीखा है। अंग्रेजीमें कहावत है, 'लुढ़कने पत्थरकी तकदीरमें काई भी नहीं जुटती', यही सोचकर अँधेरे ही उठकर कवका सड़कके किनारे आ वैठा हूँ। इसीसे तो भोरकी किरण देखी आज।"

लावण्य चटसे उसकी वातको दवाकर पूंछ उठी, "उस हरे पंखवाली चिड़िया का नाम जानते हैं ?"

अमितने कहा, "जीव-जगत्‌में चिड़ियाँ हैं, इस वातको अव तक साधारण तौरपर जानता था, विशेष-रूपसे जाननेका समय ही नहीं मिला। यहाँ आकर, आश्चर्य है, अव स्पष्ट जान सका हूँ कि चिड़ियाँ हैं, यहाँ तक कि वे गीत भी गाती हैं।"

लावण्य हँस उठी। वोली, "आश्चर्य है।"

अमितने कहा, "हँस रही हैं! मैं अपनी गहरी वातपर भी गाम्भीर्य नहीं रख सकता। यह मेरा चेष्टा-दोष है, संस्कृतमें जिसे मुद्रादोष कहते हैं। मेरे जन्म-लग्नमें चन्द्र है, और यह ग्रह कृष्णा-चतुर्दशीकी सत्यानाशी रातको भी वगैर जरा मुसकराये मरना भी नहीं जानता।",

लावण्यने कहा, "मुझे दोष मत दीजिये। शायद चिड़िया भी अगर आपकी वात सुनती तो हँस देती।"

अमितने कहा, "देखिये, मेरी वातको सहसा लोग समझ नहीं पाते, इससे हँस दिया करते हैं। समझते होते तो चुपचाप वैठकर उसपर विचार

करते। आज चिड़ियोंको मैंने नई तरहसे जाना तो इसपर लोग हँसते हैं। पर इसके भीतरकी बात यह है कि आज सब-कुछ मैंने नई तरहसे जाना है, अपनेको भी। इसपर तो हँसी नहीं चल सकती। देखिये न, बात एक ही है, पर इस बार आप बिलकुल ही चुप हैं।"

लावण्यने हँसते हुए कहा, "आप तो ज्यादा दिनके आदमी नहीं हैं, बिलकुल ही नये हैं, फिर, और भी ज्यादा नयेका आग्रह आपमें आता कहाँसे है ?"

"इसके जवाबमें एक बहुत ही गम्भीर बात कहनी पड़ रही है, जो चायकी टेबिलपर नहीं कही जा सकती। मेरे अन्दर नई जो बात आई है वह है तो अनादिकालकी पुरानी ही बात, भोरके प्रकाशके समान ही पुरानी, नये खिले भू-चम्पा फूलके समान चिरकालकी चीज, किन्तु उसका आविष्कार नया है।"

लावण्य कुछ बोली नहीं, सिर्फ हँस दी।

अमित कहता गया, "अबकी बार आपकी जो यह हँसी है सो पहरेदार की चोर-पकड़नी गोल-लालटेनकी हँसी है। समझ गया मैं, आप जिन्न कविकी भक्त हैं। उसकी पुस्तकसे आपने मेरे मुंहकी कही-हुई बात पहले ही से पढ़ रखी है। दुहाई है आपको, मुझे दागी चोर न समझ लीजियेगा। किसी-किसी समय ऐसी अवस्था हो जाती है कि मनका भीतरी भाग शंकराचार्य हो उठता है, जो कहता रहता है, 'मैंने ही लिखा है या और किसीने, यह भेदज्ञान माया है।' देखिये न, आज ही की बात है, सवेरे बैठे-बैठे सहसा मनमें आई कि अपने जाने-हुए साहित्यमेंसे ऐसी एक लाइन निकाल लूं जो मालूम हो कि अभी-अभी स्वयं मैंने ही लिखी है, और कोई कवि ऐसा लिख ही नहीं सकता था।"

लावण्यसे रहा न गया, उसने पूछा, "निकाल सके फिर ?"

"हाँ, निकाल ली।"

लावण्यके कुतूहलने फिर कोई बाधा ही नहीं मानी, वह पूछ बैठी, "कौन-सी लाइन है, बताइये न ?"

"For God's sake, hold your tongue
and let me love."[1]

लावण्यका हृदय कांप उठा।

बहुत देर चुप रहनेके बाद अमित बोला, "आप जरूर जानती हैं कि लाइन किसकी है।"

लावण्यने जरा-सा सिर झुकाकर इशारेसे बता दिया, "हां।"

अमितने कहा, "उस दिन आपकी टेबिलपर मैंने अंग्रेज-कवि डॉनका काव्य आविष्कार कर डाला था, नहीं तो यह लाइन मेरे दिमागमें न आती।"

"आविष्कार किया था?"

"आविष्कार नहीं तो क्या। किताबकी दूकानपर पुस्तकें दिखाई पड़ती हैं, पर आपकी टेबिलपर पुस्तकें प्रकट होती हैं। पब्लिक लाइब्रेरी की टेबिल देखी है मैंने, वह तो सिर्फ किताबोंका बोझ झेला करती है, और एक आपकी टेबिल भी देखी, उसने किताबोंके रहनेके लिए घोंसला बना दिया है। उस दिन डॉनकी कविताएँ मैं हृदयसे देख सका। ऐसा लगा मानो और सब कवियोंके दरवाजेपर भीड़ लगी हुई है, धक्कमधक्का हो रहा है, जैसे किसी बड़े आदमीके श्राद्धमें भिखमंगे दान ले रहे हों। मगर डॉनका काव्य-महल निर्जन है, वहां सिर्फ दो आदमियोंके लायक ही आस-पास बैठने-भरकी जगह है। इसीसे मुझे अपने सवेरेके मनकी बात ऐसी साफ-साफ सुनाई दी—

जरा तो खामोश हो, है दुहाई रामकी;
प्यार करने दो मुझे, बात है यह कामकी।"

लावण्यने आश्चर्यके साथ पूछा, "आप कविता भी लिखते हैं क्या?"

"मुझे डर है शायद आजसे लिखना न शुरू कर दूं। नवीन अमित राय क्या गजब ढायेगा, पुराने अमित रायको इसका कुछ भी पता नहीं। हो सकता है कि वह अभी लड़ाई करने चल दे।"

---

१ भगवानके लिए अपनी जबानको रोको, और मुझे प्रेम करने दो।

"लड़ाई ! किसके साथ ?"

अभी कुछ तय नहीं कर सका हूँ। वार-वार यही खयाल उठ रहा है कि किसी-एक वड़ी-भारी वातके लिए इसी वक्त आँख मींचकर प्राण दे देना चाहिए। उसके वाद अगर पश्चात्ताप करना पड़े तो धीरे-सुस्ते करता रहूँगा।"

लावण्यने हँसते हुए कहा, "प्राण अगर देने ही हों तो सावधानीसे दीजियेगा।"

"यह वात मुझसे कहना अनावश्यक है, साम्प्रदायिक दंगेमें जाना मैं पसंद नहीं करता। मुसलमान और अंग्रेजोंसे मैं वचकर चलूंगा। अगर देखूं कि वूढ़ा-टेढ़ा आदमी है, अहिंसा-तवीयतका धार्मिक चेहरा है, सिंगा वजाता-हुआ मोटरपर जा रहा है, तो मैं उसके सामने खड़ा होकर रास्ता रोकके कहूंगा, 'युद्धं देहि', जो अजीर्णरोग दूर करनेके लिए अस्पताल न जाकर ऐसे पहाड़पर आते हैं, और भूख वढ़ानेके लिए निर्लज्ज होकर हवा खाने निकलते हैं, उनसे।"

लावण्य हँसके वोली, "इतनेपर भी अगर वह विना कुछ परवाह किये ही चला जाय ?"

"तव मैं पीछेसे दोनों हाथ आकाशकी ओर उठाकर कहूँगा, 'अवकी वार मैंने तुम्हें माफ कर दिया, तुम मेरे भाई हो, हम एक ही भारत-माताकी सन्तान हैं।' समझ गईं ! मन जव वहुत वड़ा हो जाता है, आदमी तव युद्ध भी करता है और क्षमा भी।"

लावण्यने हँसते हुए कहा, "आप जव युद्धका प्रस्ताव कर रहे थे तव मनमें डर लग रहा था, पर क्षमाकी वात जिस ढंगसे आपने समझा दी, उससे तसल्ली हुई कि अव कोई चिन्ताकी वात नहीं।"

अमितने कहा, "मेरी एक वात रखियेगा ?"

"क्या वताइये ?"

"आज भूख वढ़ानेके लिए ज्यादा टहलिये नहीं।"

"अच्छा ठीक है, उसके वाद ?"

"वहां नीचे पेड़-तले, जहां नाना रंगोंकी काई-जुदा पत्थरके नीचेसे थोड़ा-थोड़ा पानी वह रहा है, चलिये वहां चलके बैठें जरा।"

लावण्यने हाथमें बँधी घड़ीकी तरफ देखकर कहा, "मगर समय अब थोड़ा ही रह गया है।"

"जीवनमें यही तो शोचनीय समस्या है, लावण्य देवी, कि समय थोड़ा है। रेगिस्तानका सफर है और साथमें पानी है सिर्फ आधी मशक, लिहाजा इस बातका खयाल हमें रखना ही होगा कि कहीं छलक-छलकाकर वह सूखी धूलमें पड़के मारा न जाय।' जिनके पास समय बहुत ज्यादा है उन्हींके लिए वक्तकी पाबन्दी शोभा देती है। देवताओंके पास असीम समय है, इसीसे ठीक समयपर सूर्य उदय होता है और अस्त भी। और हमलोगोंकी मियाद थोड़ी है, पंक्चुअल बननेमें समय नष्ट करना हमारे लिए अमित-व्ययिता है। अमरावतीका कोई अगर पूछ बैठे कि 'संसारमें किया क्या' तो किस मुंहसे यह जवाब दूंगा कि 'घड़ीके कांटेकी तरफ निगाह रखके काम करते-करते उसकी तरफ आंख उठाकर देखनेका समय ही न रहा जो जीवनके समस्त समयके अतीत और जीवनका सर्वस्व था।' इसीसे तो कहनेको मजबूर हुआ कि चलिये, वहां चलकर बैठें जरा।"

अमित जब बातचीत करता है तब उसे इस बातकी कोई आशंका ही नहीं रहती कि जिस बातमें उसे कोई आपत्ति नहीं, उसपर और किसीको कोई आपत्ति हो सकती है। और इसीलिए उसके प्रस्तावपर आपत्ति करना कठिन हो जाता है। लावण्यने कहा, "चलिये।"

घने वनकी छाया है। पतली-सी पगडंडी नीचे खसियोंके एक गांवकी तरफ उतर गई है। अध-बीचमें एक क्षीण झरनेकी धाराने गांव जानेके उस रास्तेको अस्वीकार करते-हुए उसपर अपने अधिकारके चिह्न-स्वरूप गोल-गोल कंकड़ बिछाकर अपना एक अलग रास्ता चालू कर दिया है। वहीं पत्थरपर दोनों जने बैठ गये। ठीक उसी जगह गड्ढा जरा गहरा हो गया है और वहां कुछ पानी भी जम गया है, मानो हरे परदेकी छायामें कोई परदानशीन युवती खड़ी हो और बाहर कदम रखनेमें डर रही हो।

यहाँका निर्जनताका आवरण ही लावण्यको निरावरणकी भाँति शर्मिन्दा करने लगा। मामूली कोई भी वात छेड़कर उसे ढकनेको जी चाहता है, पर कोई भी वात याद नहीं आ रही, स्वप्नमें जैसे कण्ठ रुक जाता है वैसी ही दशा है उसकी।

अमित समझ गया कि उसे कुछ-न-कुछ कहना ही चाहिए। उसने कहा, "देखिये, आर्या, हमारे देशमें दो तरहकी भापा है, एक साधु-भाषा और दूसरी चालू-भाषा। पर इनके सिवा और-भी एक तरहकी भाषा होनी चाहिए थी, वह न तो समाजकी भाषा हो और न व्यवसायकी। वह होगी आड़-ओटकी भाषा, ऐसी जगहोंके लिए। चिड़ियोंके गीत और कवियोंके काव्यके समान उस भाषाको अनायास ही कंठसे निकलना चाहिए, जैसे कि रोना निकलता है। उसके लिए आदमीको किताबकी दूकानपर दौड़ना पड़े, यह वड़ी शर्मकी वात है। हँसनेके लिए हर दफे अगर कहीं डेन्टिस्ट की दूकानपर दौड़ना पड़ता तो हमारी क्या हालत होती, जरा सोचिये तो सही। सच कहिये, लावण्य देवी, ऐसी जगहमें वैठकर क्या आपका संगीत के स्वरमें वात करनेको जी नहीं चाहता?"

लावण्य सिर झुकाये चुपचाप वैठी रही।

अमितने कहा, "चायकी टेविलकी भाषामें कौन-सी भद्र है, कौन-सी अभद्र, इसका हिसाव ही नहीं निवटना चाहता। पर इस जगह न कुछ भद्र है, न अभद्र। तो अव क्या किया जाय, वताइये? मनको सहज-स्वाभाविक करनेके लिए वगैर कविता पढ़े काम नहीं चलेगा। गद्य वहुत समय लेता है, और उतना समय हाथमें है नहीं। अगर इजाजत हो तो शुरू करूं?"

देनी पड़ी इजाजत, नहीं तो लज्जा करते ही लज्जा आ धमकती।

अमितने भूमिका वाँधी, "रवीन्द्रनाथकी कविता शायद आपको अच्छी लगती होगी?"

"हाँ, लगती तो है।"

मुझे अच्छी नहीं लगती। लिहाजा मुझे माफ कीजियेगा। मेरा एक विशेष कवि है, उसकी रचना इतनी अच्छी है कि वहुत कम आदमी

पढ़ते हैं। यहाँ तक कि उसे कोई इतना भी सम्मान नहीं देता कि समालोचना में ही दो-चार खरी-खोटी सुना दे। जी चाहता है कि आज मैं उसीमेंसे कुछ कहूँ ?"

"आप इतना डर क्यों रहे हैं ?"

इस विषयमें मेरा अनुभव शोचनीय है। कविवरकी निन्दा करनेसे आपलोग जातसे निकाल देती हैं, और कोई उससे बचकर चुपचाप निकल जाना चाहता है तो उसके लिए कठोर भाषाकी सृष्टि होती है। संसारमें सिर्फ इसी बातपर कि 'जो मुझे अच्छा लगता है वह दूसरे किसीको क्यों नहीं अच्छा लगता', इतनी खूनखराबी होती है जिसका ठिकाना नहीं।"

"मुझसे खूनखराबीका कोई डर नहीं। और अपनी रुचिके लिए मैं पराई रुचिके समर्थनकी भीख भी नहीं माँगती।"

"यह आपने खूब कही ! तो फिर निर्भय होकर शुरू करता हूँ—

रे अपरिचित, हाय तेरे
हैं मुठीमें बन्द मेरे,
कैसे छुड़ायेगा बता,
जब तक न मैं पहचानता ?

बातपर गौर किया आपने ? न-पहचाननेका बन्धन है, सबसे कड़ा बन्धन। अपरिचित-जगतका बन्दी बना हूँ मैं, पहचान लेनेके बाद यहाँसे छुटकारा पाऊँगा। इसीका नाम है 'मुक्ति-तत्त्व'।

किस अन्ध-क्षणमें
विजड़ित तन्द्रा-जागरणमें
बीती रात, जब हुआ सवेरा,
मैंने निरखा मुखड़ा तेरा।
आँखोंमें आँख डालकर पूछा मैंने,
'जा छिपी कहाँ, आत्म-विस्मृतिके किस कोनमें ?

अपनेको भूले रहने-जैसा कोना, ऐसा धुंधला कोना, मिलना मुश्किल है। संसारमें न-जाने कितनी देखने-लायक निधियाँ थीं, जिन्हें देख ही नहीं

सका, वे आत्म-विस्मृतिके कोनेमें जा छिपी हैं, दिखाई ही नहीं पड़तीं। पर इसके मानी यह नहीं कि निराश होकर पतवार ही छोड़ दी जाय।

तुमसे जान-पहचान कहीं
सहजमें होगी नहीं,
गाऊँ भले ही गान मैं
मृदु कंठसे
ऐन तेरे कानमें।
तेरी संशय-व्याकुल वाणीपर
पाऊंगा विजय मैं;
लज्जा-शंका-दुविधाकी कीचमेंसे लाऊँगा
खींचकर तुझे मैं
निर्दय प्रकाशमें।

कवि हर्गिज छोड़नेवाला नहीं। देखा, कितनी जबरदस्त ताकत है? रचनाका पौरुष देखा आपने!

जाग उठेगी तू आँसुओंकी धारमें,
पहचानेगी आपको अपने ही प्यारमें
टूटेगी बन्धन-डोर
दूंगा मुक्ति तुझे जब,
होगी मेरी मुक्ति तब।

ठीक ऐसीकी ऐसी तान आपको नामजद लेखकोंमें नहीं मिलनेकी। इसे आप सूर्य-मण्डलमें आगकी आँधी समझिये। यह सिर्फ 'लिरिक' नहीं, निष्ठुर जीवन-तत्त्व है।"— और फिर लावण्यके मुंहकी ओर एकटक देखता हुआ कहने लगा—

"हे अपरिचित,
दिन गया, संध्या हुई, समय यों ही चला जायगा,
अचानक सब बन्धन तोड़
बाधाओंसे बदकर होड़

निर्भय हूं, जीवनका भय गया भाग,
अपने परिचयकी तू जला आग,
चढ़ाकर उसमें जीवन अपना
करूँगा मैं सार्थक सपना।"

कविता पूरी हो भी न पाई कि अमितने चटसे लावण्यका हाथ धर दवाया। लावण्यने अपना हाथ छुड़ाया नहीं। वह अमितके मुंहकी ओर देखने लगी, कुछ वोली नहीं।

इसके वाद फिर किसीको कोई वात कहनेकी जरूरत ही नहीं हुई। लावण्य अपनी घड़ीकी तरफ देखना भी भूल गई।

६— घटकई

अमित योगमायाके घर जाकर वोला, "मौसीजी, घटकई करने आया हूं। विदा देते वक्त कंजूसी न कीजियेगा।"

"पसन्द आ जाय तव तो! पहले नाम-धाम विवरण तो वखानो।"

अमितने कहा, "नामसे वरकी कीमत नहीं आंकी जा सकती।"

"तव तो घटक-विदाईके हिसावमेंसे कुछ काट-छाँट करनी पड़ेगी मालूम होता है।"

"यह तो आपने वेजा वात कही। नाम जिसका वड़ा होता है उसकी दुनिया घरमें कम, और वाहरमें ज्यादा होती है। घरके मन-माफिक चलनेमें उसका जो समय लगता है उससे कहीं ज्यादा समय उसे वाहरके मन-माफिक चलनेमें देना पड़ता है। उस आदमीका वहुत कम अंश ही स्त्रीके हिस्सेमें आता है, पूरे व्याहके लिए उतना काफी नहीं। नामी आदमी का व्याह स्वल्प-विवाह है, वहु-विवाहकी तरह ही गर्हित है वह।"

"अच्छा, नाम कम सही, पर रूप?"

"वतानेको जी नहीं चाहता, कहीं अत्युक्ति न कर वैठूं।"

"अत्युक्तिके जोरसे ही शायद वाजारमें चलाना है उसे?"

"वर चुननेमें सिर्फ दो वातोंपर लक्ष्य रखना चाहिए, नामके द्वारा घरसे और रूपके द्वारा वधूसे वर कहीं आगे न वढ़ जाय।"

"अच्छा, नाम और रूपको जाने दो, वाकीका ?"

"वाकी जो कुछ रहा, कुल मिलाकर उसे पदार्थ[1] कहा जा सकता है। कमसे कम वह अपदार्थ तो नहीं है।"

"वुद्धि ?"

"लोग जिससे उसे वुद्धिमान समझकर सहसा भ्रममें आ सकें इतनी वुद्धि है उसमें।"

"विद्या ?"

"स्वयं न्युटनके समान। वह जानता है कि ज्ञान-समुद्रके किनारेसे उसने सिर्फ छोटे-छोटे कंकड़ वीने हैं। उनकी तरह वह हिम्मतके साथ कह नहीं सकता, इस डरसे कि कहीं चटसे लोग विश्वास न कर वैठें।"

"वरकी योग्यताकी सूची तो कुछ छोटी ही मालूम होती है।"

"अन्नपूर्णाकी पूर्णता प्रकट करनेके लिए ही तो शिव अपनेको भिखारी कवूल करते हैं, इसमें लज्जाकी कोई वात नहीं।"

"तो फिर परिचयको और-भी जरा स्पष्ट कर दो।"

"जाना हुआ घर है। वरका नाम है अमितकुमार राय। हँसतीं क्यों हैं, मौसीजी ? आप सोचती होंगी, मजाक है।"

"सो तो मनमें डर है, वेटा, कहीं अन्तमें मजाक ही न सावित हो !"

"यह सन्देह तो वरपर दोषारोप है।"

"वेटा, घर-गृहस्थीके भारको हँसके हलका कर रखना कोई कम क्षमता की वात नहीं।"

"मौसीजी, देवताओंमें वह क्षमता है, और इसीसे वे विवाहके अयोग्य होते हैं। दमयन्तीने इस वातको समझा था।"

---

१ 'पदार्थ'—सार, योग्य। 'अपदार्थ'—सारहीन, अयोग्य। यह वंगला में प्रयुक्त अर्थ है।

"मेरी लावण्य क्या सचमुच तुम्हें पसन्द है?"

"कैसी परीक्षा चाहती हैं, बताइये।"

"परीक्षा तो एकमात्र यही है कि तुम निश्चित जान जाओ कि लावण्य तुम्हारे ही हाथमें है।"

"जरा और व्याख्या कर दीजिये।"

"जो रत्न सस्तेमें मिला है उसकी असल कीमत जो जानता है, उसीको समझूंगी कि जौहरी है।"

"मौसीजी, वातको आप वहुत ज्यादा सूक्ष्म किये दे रही हैं, ऐसा लगता है जैसे किसी छोटी कहानीकी साइकोलॉजीपर सान चढ़ा ली हो। मगर वात असलमें काफी मोटी है। संसारके नियमानुसार एक भद्र पुरुष एक भद्र रमणीसे व्याह करनेके लिए उन्मत्त हो रहा है। दोष-गुण मिलाकर लड़का काम-चलाऊ है, और लड़कीकी तो वात ही क्या। ऐसी हालतमें साधारण मौसियाँ तो स्वभावके नियमानुसार ही खुश होकर उसी वक्त आनन्द-लड्डू फोड़ना शुरू कर देती हैं।"

"डरो मत, वेटा, लड्डूपर हाथ पड़ चुका है। मान लो कि लावण्यको तुम पा ही चुके। फिर भी हाथमें पानेके वाद भी अगर तुम्हारी पानेकी इच्छा प्रवल वनी ही रहे, तभी समझूंगी कि तुम लावण्य जैसी लड़कीसे व्याह करनेके योग्य हो।"

"मैं जो कि ऐसा आधुनिक हूँ, मुझे भी दंग कर दिया आपने।"

"आधुनिकके क्या लक्षण देखे?"

"देखता हूँ कि वीसवीं सदीकी मौसियाँ लड़कियोंका व्याह करनेमें भी डरती हैं।"

"इसकी वजह यह है कि पहलेकी शताव्दियोंकी मौसियाँ जिनका व्याह कराती थीं वे होती थीं खेलकी गुड़ियाँ, और अव जो व्याहकी उम्मेदवार होती हैं मौसियोंका खेलका शौक मिटानेकी तरफ उनका मन ही नहीं जाता।"

"डरिये नहीं आप। पाकर-पाना निवटता नहीं, वल्कि उसकी चाहना वढ़ती ही जाती है। लावण्यसे व्याह करके इसी तत्त्वको सिद्ध कर दिखाने

के लिए ही अमित राय मर्त्यमें अवतीर्ण हुआ है। नहीं तो, मेरी मोटर-गाड़ी अचेतन वस्तु होनेपर भी अ-स्थान और अ-समयमें ऐसी अनहोनी अद्भुत घटना क्यों कर डालती ?"

"वेटा, विवाह-योग्य उमरका सुर अभी तक तुम्हारी वातचीतमें आया नहीं है, अन्तमें सब-कुछ किया-कराया वाल्यविवाहमें परिणत न हो जाय।"

"मौसीजी, मेरे मनका स्वकीय एक आपेक्षिक गुरुत्व है, उसीकी वदौलत मेरे हृदयकी भारी वातें जवानपर खूब हलकी होकर वहने लगती हैं, पर इससे उनका वजन नहीं घटता।"

योगमाया चली गईं भोजनकी व्यवस्था करने। अमित कभी इस कमरेमें और कभी उस कमरेमें घूमता फिरा। दर्शनीय कोई दिखाई नहीं दिया। दिखाई दिया यतिशंकर। याद आ गई, आज उसे 'ऐण्टॉनी क्लियोपैट्रा' पढ़ानेकी वात थी। अमितके चेहरेका भाव देखते ही यति समझ गया कि जीवपर दया करके ही आज चटसे छुट्टी ले लेना उसका आशु कर्तव्य है। उसने कहा, "अमित-दादा, अगर कुछ खयाल न करें तो, आज मैं छुट्टी चाहता हूँ, अपर-शिलांग घूमने जाऊँगा।"

अमित पुलकित होकर वोल उठा, "पढ़नेके समय जो छुट्टी लेना नहीं जानते वे पढ़ते ही हैं, पढ़ना हजम नहीं करते। तुम छुट्टी माँगो और मैं कुछ खयाल करूँ, ऐसा असम्भव भय तुम्हें हुआ कैसे ?"

"कल रविवार है, छुट्टी तो है ही, यह सोचकर कहीं तुम –"

"मेरी स्कूल-मास्टरी वुद्धि थोड़े ही है, भाई, नियमित छुट्टीको तो मैं छुट्टी ही नहीं मानता। जो छुट्टी नियमित है उसका भोग करना और वँधे हुए पशुका शिकार करना एक ही वात है। उससे छुट्टीका रस फीका पड़ जाता है।"

सहसा जिस उत्साहके साथ अमितकुमार छुट्टी-तत्त्वकी व्याख्या करनेमें उन्मत्त हो उठा, उसके मूल-कारणका अनुमान करके यतिशंकरको वड़ा आनन्द आया। उसने कहा, "कई दिनोंसे छुट्टी-तत्त्वके सम्वन्धमें तुम्हारे दिमागमें नये-नये भाव पैदा हो रहे हैं। उस दिन भी तुमने मुझे उपदेश

दिया था। ऐसे ही और कुछ दिन चलता रहा तो छुट्टी लेनेमें मेरा हाथ सध जायगा।"

"उस दिन क्या उपदेश दिया था?"

"बताया था कि 'कर्तव्य-बुद्धि मनुष्यका एक महान् गुण है। उसकी पुकार होनेपर फिर जरा भी देर करना उचित नहीं।' कहके किताब बन्द कर दी और चटसे बाहर भाग गये। बाहर शायद कहीं किसी अकर्तव्यका आविर्भाव हुआ होगा, मैंने लक्ष्य नहीं किया।"

यतिशंकरकी उमर बीसके खानेमें है। अमितके मनमें जो चांचल्य उठ रहा है, उसके अपने मनमें भी उसका आन्दोलन आकर लग रहा है। उसने लावण्यको अब तक शिक्षक-जातीय ही समझ रखा था, पर आज अमितके अनुभवसे ही वह समझ गया है कि वह नारी-जातीय है।

अमितने हँसके कहा, "कार्य सामने आते ही तैयार हो जाना चाहिए, इस उपदेशका बाजार-भाव ज्यादा है, अकबरी अशरफीकी तरह, पर उसके दूसरी ओर खुदा रहना चाहिए कि 'अकार्य सामने आते ही उसे वीरोंकी भाँति मान लेना चाहिए'।"

"तुम्हारी वीरताका परिचय आजकल अकसर मिला करता है।"

यतिशंकरकी पीठ ठोंकते हुए अमितने कहा, "जरूरी कामकी एक ही वारमें बलि देनेकी पवित्र अष्टमी तिथि तुम्हारी जीवन-पंजिकामें एक दिन जब आयेगी तब देवीकी पूजामें देर मत करना, भाई, उसके बाद विजय-दशमी आनेमें देर नहीं लगती।"

यतिशंकर चला गया। इधर अकर्तव्य-बुद्धि भी जाग्रत थी, पर जिसका आश्रय पाकर अकार्य दिखाई देता है उसका कहीं पता ही नहीं। अमित घरसे निकल आया बाहर।

बाहर आकर देखा, सामने फूलोंसे आच्छन्न गुलाबकी लता है, उसके एक तरफ सूर्यमुखीकी भीड़ है और दूसरी तरफ चौखूंटे काठके टबमें है चन्द्रमल्लिका। घासके ढालू खेतके ऊपरकी तरफ एक 'युकैलिप्टस'का पेड़ है बड़ा-भारी। उसके तनेसे पीठ लगाये और सामने पैर फैलाये बैठी

है लावण्य। मटमैले रंगका अलवान ओढ़े है, और पाँवोंपर पड़ रही है सवेरेकी घाम। गोदमें रूमालपर कुछ रोटीके टुकड़े और फोड़े हुए अखरोट रखे हैं। आज सवेरेका समय उसने जीव-सेवामें बिताना चाहा था, पर उसे वह भूल गई। अमित उसके पास जा खड़ा हुआ। लावण्यने सिर उठाके उसके मुंहकी तरफ देखा और चुप रही। चेहरा उसका मृदु मुसकान से खिल उठा। अमितने ठीक उसके सामने बैठकर कहा, "एक शुभ संवाद है। मौसीजीकी सम्मति मिल गई।"

लावण्यने इसका कोई उत्तर न देकर पास ही खड़े-हुए एक निष्फल पीचके पेड़की तरफ अखरोटका एक टुकड़ा फेंक दिया। देखते-देखते उसके तनेसे एक गिलहरी उतर आई। यह जीव लावण्यके मुष्टिभिक्षुकोंमेंसे एक है।

अमितने कहा, "यदि आपत्ति न करो तो तुम्हारे नामको जरा छाँट देना चाहता हूँ।"

"छाँट दो।"

"तुम्हें 'वन्य' कहा करूँगा मैं।"

"वन्य !"

"नहीं-नहीं, यह नाम तो शायद तुम्हारा बदनाम हो गया। ऐसा नाम तो मुझ ही को शोभा देगा। मैं तुम्हें कहा करूंगा 'वन्या' क्यों ठीक है न ?"

"सो ही कहना। पर अपनी मौसीजीके सामने नहीं।"

"हर्गिज नहीं। ये सब नाम बीजमंत्रके समान हैं, और-किसीके सामने प्रकट थोड़े ही किये जाते हैं। यह तो सिर्फ मेरे मुंह और तुम्हारे कानों तक ही सीमित रहेगा।"

"अच्छी बात है।"

"मेरे लिए भी ऐसे ही एक गैर-सरकारी नामकी जरूरत है। सोच रहा हूँ, 'ब्रह्मपुत्र' कैसा रहेगा ? बन्या (बाढ़) सहसा आई और उसके दोनों तटोंको बहा ले गई।"

"नाम हमेशा बुलाने-करनेके लिए वजनमें कुछ भारी होगा।"

"बात तो ठीक है। कुली बुलाना पड़ेगा पुकारनेके लिए। तो तुम्हीं बताओ कोई नाम? वह तुम्हारी ही सृष्टि होगी।"

"अच्छा, मैं भी तुम्हारा नाम जरा हलका कर दूंगी। तुम्हें कहा करूंगी मैं 'मीता'।"

"वाह वाह! पदावलीमें इसीका एक दूसरा नाम है 'पीतम'। बन्या, मैं सोच रहा हूं, अपने उसी नामसे अगर सबके सामने मुझे बुलाओ तो हर्ज क्या है?"

"डर लगता है, कहीं एक कानका धन पाँच कानमें जाकर सस्ता न हो जाय।"

"बात तो झूठ नहीं। दोके कानोंमें जो एक है, पाँचके कानोंमें वह भग्नांश है। बन्या!"

"क्या मीता?"

"तुम्हारे नामपर अगर कविता बनाऊं तो कौन-सी तुक बिठाऊंगा जानती हो? —अनन्या।"

"उसके मानी क्या होंगे?"

"मानी होंगे, तुम जो हो वही हो, और कुछ भी नहीं हो।"

"यह कोई विशेष आश्चर्यकी बात तो नहीं हुई।"

"कहती क्या हो! बहुत ही आश्चर्यकी बात है। दैवसे ही कोई-कोई आदमी ऐसा दिखाई देता है जिसे देखते ही मन चौंककर कह उठता है 'यह मुझ ही जैसा है, और पाँच जनों जैसा नहीं है।' इसी बातको मैं कवितामें कहूंगा—

हे मेरी बन्या, तुम हो अनन्या,
अपने स्वरूपमें आप ही धन्या।"

"तुम क्या मुझपर कविता बनाया करोगे क्या?"

"जरूर। किसकी मजाल है जो रोके उसकी गति!"

"ऐसे जानपर क्यों खेलना चाहते हो?"

"कारण बताता हूं। नींद न आनेसे जैसे इधर-उधर करवट बदलना पड़ता है उसी तरह कल रातको ढाई बजे तक सिर्फ 'ऑक्सफोर्ड बुक ऑफ वर्सेज'के पन्ने उलटता रहा हूं। प्रेमकी कविता उसमें ढूंढ़े ही न मिली, पहले वे पाँवसे आ-आ लगती थीं। स्पष्ट ही समझमें आने लगा कि मैं लिखूंगा, इसके लिए संसार आज प्रतीक्षा कर रहा है।"

इतना कहकर उसने लावण्यका बाँया हाथ अपने दोनों हाथोंके बीचमें दबा लिया, और फिर बोला, "हाथ तो घिर गये, कलम काहेसे पकड़ूंगा ? तुकका सबसे अच्छा मेल है हाथों-हाथ मिलना। यह जो तुम्हारी उंगलियाँ मेरी उंगलियोंसे बातें कर रही हैं, आज तक कोई भी कवि ऐसे सहज-स्वाभाविक ढंगसे कुछ लिख ही नहीं सका।"

"तुम्हें जल्दी तो कुछ पसन्द नहीं आता, इसीसे तुमसे इतना डरती हूं, मीता।"

"पर मेरी बात समझ देखो जरा। (रामचन्द्रने सीताका सत्य परखना चाहा था बाहरकी आगसे, इसीसे सीताको खो बैठे वे। कविताका सत्य परखा जाता है भीतरकी अग्नि-परीक्षासे। वह आग हृदयकी होती है। जिसके हृदयमें वह आग नहीं, वह परखेगा किस चीजसे ? पाँच आदमियों के मुंहकी बात उसे मान लेनी पड़ती है, और बहुधा वह होती है दुर्मुखकी बात। मेरे मनमें आज आग जल रही है। उस आगके भीतरसे मैं अपनी पुरानी पढ़ी-हुई चीजें फिरसे पढ़े ले रहा हूं। कितना कम टिका वह। सब जलकर खाक हुआ जा रहा है। कवियोंके शोरगुलके बीच खड़े होकर आज मुझे कहना पड़ा, तुमलोग इतना चिल्लाके बात न करो, असल बात आहिस्तेसे कह दो—

For God's sake, hold your tongue
and let me love."

बहुत देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर, किसी एक समय लावण्य का हाथ उठाकर अमितने अपने मुंहपर फेर लिया। बोला, "जरा सोच देखो, बन्या, आज सवेरे ठीक इसी क्षणमें सारे संसारमें कितने असंख्य लोगों

ने मनचाही चीज चाही होगी, पर मिली कितने थोड़ोंको ? मैं उन्हीं थोड़े आदमियोंमेंसे एक हूं। सारी पृथ्वीपर एकमात्र तुम ही उस सौभाग्यवान् आदमीको देख सकीं शिलांग-पहाड़के एक कोनेमें, इस युकैलिप्टस-पेड़के नीचे। संसारकी परमाश्चर्यजनक घटनाएँ परम नम्र होती हैं, आँखोंके आगे आना ही नहीं चाहतीं। और मजा यह कि तुम्हारा वह तारिणी तलपात्र कलकत्तेकी गोलदिग्घीसे लेकर नोआखाली-चटगाँव तक चिल्ला चिल्लाके शून्यमें घूंसा तान-तानकर टेढ़ी राजनीतिकी कोरी आवाज फैला आया, और वही जबरदस्त फजूलकी खबर इस देशको सर्वप्रधान खबर हो उठी! कौन जाने, शायद वही अच्छा हो!"

"क्या अच्छा हो?"

"यही कि संसारकी असल चीजें हाट-बाजारमें ही चलती-फिरती रहती हैं, फिर भी फालतू आदमियोंकी आँखोंकी ठोकर खा-खाके नहीं मरतीं। उनका गहरा परिचय विश्व-जगतकी अन्तरंग नाड़ियोंके साथ है। अच्छा, बन्या, मैं तो बकता ही जा रहा हूँ, तुम चुपचाप बैठी-बैठी क्या सोच रही हो बताओ तो?"

लावण्य आँखें झुकाये बैठी रही, उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

अमितने कहा, "तुम्हारा यह चुप रहना कुछ ऐसा लगता है जैसे बगैर तनखा चुकाये ही उसने मेरी सब बातोंको बरखास्त कर दिया हो।"

लावण्यने आँखें झुकाये हुए ही कहा, "तुम्हारी बातें सुनके मुझे डर लगता है, मीता।"

"डर किस बातका?"

"तुम मुझसे क्या तो चाहते हो, और मैं भला तुम्हें कितना दे सकूंगी, मेरी कुछ समझमें नहीं आता।"

"कुछ सोचे-समझे बिना ही तुम दे सकती हो, इसीमें तो तुम्हारे दान का मूल्य है।"

"तुमने जब कहा कि मौसीजीने सम्मति दे दी है तब मेरा मन कैसा-तो हो उठा। मालूम हुआ कि अब मेरे पकड़े जानेके दिन आ गये।"

"पकड़ाई तो देनी ही होगी।"

"मीता, तुम्हारी रुचि, तुम्हारी बुद्धि मुझसे बहुत ऊपर है। तुम्हारे साथ एकसंग चलते-चलते एक दिन मैं तुमसे इतनी पिछड़ जाऊँगी कि तब फिर तुम मुझे मुड़के बुलाओगे भी नहीं। उस दिन मैं तुम्हें जरा भी दोष न दूंगी। — नहीं-नहीं, कुछ कहो मत, पहले मेरी बात सुन लो। तुमसे मैं विनती करती हूँ, मुझसे तुम व्याह करना मत चाहो। व्याह करके फिर गाँठ खोलने लगोगे तो उसमें और भी उलझन पड़ जायगी। तुम्हारे पाससे जो कुछ मुझे मिला है वह मेरे लिए काफी है, जीवनके अन्त तक उससे मेरी गुजर हो जायगी। मगर तुम अपनेको बहलाओ मत।"

"वन्या, तुम आजकी उदारतामें कलकी कंजूसीकी आशंका क्यों कर रही हो?"

"मीता, तुम्हींने मुझे सच कहनेका जोर दिया है। आज तुमसे जो-कुछ मैं कह रही हूँ, तुम खुद भी उसे भीतर-ही-भीतर समझते हो। मानना नहीं चाहते, इसलिए कि जो रस अभी भोग रहे हो उसमें कहीं कोई बाधा न आ जाय। तुम तो घर-गृहस्थी खोलनेवाले जीव नहीं हो, तुम तो सिर्फ रुचिकी तृष्णा मिटानेके लिए फिरा करते हो। इसीसे साहित्य-ही-साहित्यमें तुम विहार किया करते हो। मेरे पास भी तुम इसीलिए आये हो। कह दूं ठीक बात? विवाह वस्तुको तुम मन-ही-मन जानते हो, जैसा कि तुम हमेशा ही कहा करते हो, 'वल्गर' है, भद्दा। वह बड़ा रेस्पेक्टेब्ल है, शास्त्रों की मुहर-शुदा, उन्हीं सम्पत्तिशाली लोगोंकी पालतू वस्तु है जो सम्पत्तिके साथ सहधर्मिणीको मिलाकर मोटे तकियोंके सहारे गद्दीमें बैठा करते हैं।"

"वन्या, तुम आश्चर्यजनक नरम सुरमें आश्चर्यजनक कड़ी बात कह सकती हो।"

"मीता, यही चाहती हूं मैं कि प्रेमके जोरसे हमेशा कठिन रह सकूं। तुम्हें बहलाये रखनेके लिए जरा भी धोखा न दूं कभी। तुम जैसे आज हो, ठीक वैसे ही बने रहो। तुम्हारी रुचिमें मैं जितनी अच्छी लगूं उतनी ही लगती रहूं। किन्तु तुम जरा भी दायित्व न लेना, इसीसे मैं खुश रहूंगी।"

"वन्या, तो अब मुझे भी अपनी बात कह लेने दो। कैसे आश्चर्यपूर्ण ढंगसे तुमने मेरे चरित्रकी व्याख्या की है। इस बातको लेकर मैं बहस नहीं करूँगा। पर एक जगह तुम जरा गलती कर रही हो। आदमीका चरित्र भी चलता है। घरमें जो उसकी पालतू अवस्था है उसमें उसका एक तरह का जंजीर-बँधा स्थावर परिचय है। उसके बाद जब एक दिन भाग्यके किसी-एक आकस्मिक वारसे उसकी वह जंजीर कट जाती है तब वह जंगल की ओर भागता है, तब उसकी मूर्ति कुछ और ही होती है।"

"आज तुम उसमेंसे कौनसे हो?"

"जो मेरे अपने बराबर यानी सदैवके साथ नहीं मिलता, वही हूँ मैं आज। इसके पहले बहुत-सी लड़कियोंसे मेरा परिचय हुआ है, समाजकी बनी नहरसे चलकर पक्के घाटपर, रुचिकी चिमनी-दार लालटेनके उजालेमें। उसमें देखना-भालना होता है, जानना-पहचानना नहीं होता। तुम खुद ही बताओ न, वन्या, तुम्हारे साथ भी क्या मेरा वैसा ही परिचय है?"

लावण्य चुप रही।

अमित कहने लगा, "बाहरसे दो नक्षत्र एक दूसरेकी वन्दना और प्रदक्षिणा करते हुए चलते हैं, तरीका अत्यन्त शोभन है और निरापद भी, उसमें मानो उनकी रुचिका आकर्षण है, किन्तु मर्मका मेल नहीं। सहसा अगर मौतका धक्का लगता है तो बुझ जाती है दोनों नक्षत्रोंकी लालटेनें, दोनोंमें एक हो उठनेकी आग जल उठती है। अब वह आग जल उठी है, अमित राय बदल गया है। मनुष्यका इतिहास ही ऐसा है। उसे देखनेसे मालूम होता है कि वह धारावाहिक है, किन्तु है असलमें वह आकस्मिक का माला गूंथना। सृष्टिकी गति चलती है उसी आकस्मिकके धक्के खा खाकर, रेलपेलमें, एक युगसे दूसरे युगमें बढ़ती चली जाती है झपतालकी लयमें। तुमने मेरा ताल बदल दिया है, वन्या, उस तालमें ही तो तुम्हारा सुर और मेरा सुर दोनों एक जगह आ गुंथे हैं।"

लावण्यकी आँखोंके पलक भींग आये। फिर भी वह यह बात सोचे बिना न रह सकी कि 'अमितके मनकी गढ़न साहित्यिक ढंगकी है, प्रत्येक

अभिज्ञतामें, हर जानकारीमें, उसके मुंहसे बातोंका फुहारा छूट निकलता है। वही उसके जीवनकी फसल है, उसीसे उसे आनन्द मिलता है। मेरी जरूरत उसे इसीलिए है। ये सब बातें उसके मनमें बरफ होकर जमी हुई हैं, वह खुद उनका भार अनुभव कर रहा है, पर आहट नहीं सुन पाता, मुझे खुद गरमी पहुँचाकर उसे गलाकर झरा देना होगा।'

दोनों बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे। लावण्यने सहसा एक समय प्रश्न किया, "अच्छा, मीता, तुम्हें क्या ऐसा नहीं मालूम होता कि जिस दिन 'ताजमहल' बनकर तैयार हुआ था उस दिन मुमताजकी मृत्युके लिए शाहजहां खुश हुए थे? उनके स्वप्नको अमर करनेके लिए उस मृत्युकी जरूरत थी। वह मरना ही मुमताजका सबसे बड़ा प्रेमका दान था। ताज-महलमें शाहजहांका शोक प्रकट नहीं हुआ, बल्कि उसमें उनके आनन्दने अपना रूप पाया है।"

अमितने कहा, "अपनी बातोंसे तुम क्षण-क्षणमें मुझे चौंकाती चली जा रही हो, वन्या! तुम जरूर कवि हो।"

"मैं नहीं चाहती कवि होना।"

"क्यों नहीं चाहतीं?"

"जीवनके उत्तापसे केवल बातोंका प्रदीप जलानेको मेरा जी नहीं चाहता। संसारमें जिन्हें उत्सव-सभा सजानेका हुक्म मिला है, बातें उन्हींके लिए अच्छी हैं। मेरे जीवनका ताप जीवनके कामके लिए ही है।"

"वन्या, तुम बातोंको अस्वीकार कर रही हो? तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारी बातें मुझे किस कदर जगा देती हैं। तुम कैसे जानोगी कि तुम क्या कह रही हो, और उस कहनेके मानी क्या हैं! फिर, मालूम होता है निवारण चक्रवर्तीको बुलाना पड़ेगा। उसका नाम सुनते-सुनते भीतरसे तुम झुंझला उठी होगी। पर क्या करूँ बताओ, वही मेरे मनकी बातोंका भण्डारी है। निवारण अभी तक अपने लिए भी आप पुराना नहीं हुआ है, वह प्रत्येक बार ही जो कविता लिखता है वही उसकी पहली कविता है। उस दिन उसकी कापी उलटने-पलटनेमें, कुछ दिन पहलेकी उसकी एक

कविता हाथ लग गई। 'झरना' पर है कविता। कैसे-तो उसे खबर लग गई कि शिलांग-पहाड़पर आकर मेरा झरना मुझे मिल गया है। वह लिखता है :—

निर्झर, तेरे निर्मल जलकी
चंचल धारा,
देख रहे हैं उसमें मुखड़ा
सूरज - तारा।

मैं खुद भी अगर लिखता तो तुम्हारा मैं इससे बढ़कर स्पष्ट वर्णन नहीं कर सकता था। तुम्हारे मनके अन्तःपुरमें ऐसी एक स्वच्छता है कि उसमें आकाशका सम्पूर्ण आलोक सहजमें ही प्रतिबिम्बित हो उठता है। तुम्हारे सब-कुछपर छाये हुए उस उजालेको मैं देख रहा हूँ तुम्हारे चेहरेपर, तुम्हारी हँसीमें, तुम्हारी बातोंमें, तुम्हारे चुपचाप बैठे रहनेमें, तुम्हारे चलने-फिरनेमें।

अपनी उस धारामें मेरी भी छायाको
किनारे कहीं थोड़ी-सी जगह दे खिलाना तुम,
खेलके बहाने क्या
बनके तुम्हारे मीत, होंगे न खिलौना हम ?
मेरी उस छायामें मिला देना घोलकर
कोयल-सी मीठी धुन,
अपनी तुम वाणी भी देना साथ वही जो
तुम्हारी हो चिरन्तन।

तुम झरना हो। अपने जीवन-स्रोतमें सिर्फ बहती ही चली जा रही हो सो बात नहीं, तुम्हारे चलनेके साथ-साथ तुम्हारा बोलना भी चालू है। संसारके जिन कठोर और अचल पत्थरोंपरसे तुम चलती हो वे भी तुम्हारे संघातसे एकस्वरमें बज उठते हैं।

हे निर्झरिणी, मेरी छाया
मुसकान-भरी तेरी काया
दोनोंकी है एक छवि,

देख उसी छविको मनमें
जाग उठा मम प्राण-कवि।
तेरे प्रकाशने पद-पदपर
भाषा देकर मेरे मनको
है दिखा दिया वाणीका रूप,
ओ निर्झरिणी,
मेरी शरणी,
तेरे प्रवाहने जगा दिया मन,
मैं जान गया अपनेपनको।"

लावण्यने जरा उदास हँसी हँसकर कहा, "मुझमें प्रकाशकी चमक, भाषाकी दमक और प्रवाहकी तमक चाहे कितनी ही क्यों न हो, तुम्हारी छाया आखिर छाया ही रह जायगी, उस छायाको मैं पकड़के नहीं रख सकती।"

अमितने कहा, "पर किसी दिन शायद तुम देख लोगी कि संसारमें और-कुछ अगर न भी रहे, तो भी, कमसे कम मेरा 'वाणीका रूप' तो रह ही गया है।"

लावण्यने हँसकर कहा, "कहाँ? निवारण चक्रवर्तीकी कापीमें?"

"संसारमें आश्चर्य कुछ भी नहीं। मेरे मनके नीचेके स्तरमें जो धारा बह रही है वह कैसे निवारणके फव्वारेमेंसे निकलने लगती है?"

"तब तो शायद, किसी दिन निवारण चक्रवर्तीके फव्वारेमें ही तुम्हारे मनको पा जाऊँगी, और कहीं भी नहीं।"

इतनेमें भीतरसे बुलावा आ गया। खाना तैयार है।

अमित भीतर जाते-जाते सोचने लगा, 'लावण्य अपनी बुद्धिके प्रकाशमें सब-कुछ साफ जान लेना चाहती है। मनुष्य स्वभावतः जहाँ अपनेको बहलाये रखना चाहता है, लावण्य वहाँ भी अपनेको नहीं बहला सकती। अभी-अभी उसने जो बात कही है उसका तो मुझसे प्रतिवाद नहीं बना। अन्तरात्माकी गभीर उपलब्धिको बाहर प्रकट करना ही पड़ता है। कोई

करता है जीवनमें और कोई करता है अपनी रचनामें, जीवनको छूते-हुए और साथ ही उससे हटते-हुए नदी जैसे वरावर तीरसे हटती हुई चलती है, ठीक वैसे ही। (मैं क्या हमेशा रचनाका स्रोत लेकर ही जीवनसे हटता रहूंगा? क्या यहींपर स्त्री-पुरुषमें भेद है? पुरुष अपनी सम्पूर्ण शक्तिको सार्थक करता है सृष्टि करनेमें, वह सृष्टि आगे वढ़ानेके लिए ही कदम-कदम पर अपनेको भूलता रहता है। स्त्री अपनी सारी शक्तिका प्रयोग करती है रक्षा करनेमें, प्राचीनकी रक्षा करनेके लिए ही नूतन सृष्टिको वह वाधा देती है। रक्षाके प्रति सृष्टि निष्ठुर होती है, और सृष्टिके प्रति रक्षा है विघ्न। ऐसा क्यों हुआ? एक-न-एक जगह ये दोनों परस्परको आघात करेंगी ही। जहाँ वहुत ज्यादा मेल होता है वहीं जवरदस्त विरुद्धता रहती है। इसीसे सोचता हूँ कि हमारा सवसे वढ़कर जो पावना है वह मिलन नहीं किन्तु मुक्ति है।') — ये वातें सोचनेमें अमितको चोट पहुँची, किन्तु उसका मन उन्हें अस्वीकार न कर सका।

८— लावण्यका तर्क

योगमायाने कहा, "वेटी लावण्य, तुमने ठीक समझ लिया है न?"

"हाँ, ठीक समझ लिया है, मा।"

"अमित वड़ा चंचल है। मैं इस वातको मानती हूँ, इसीलिए उससे इतना स्नेह करती हूँ। देखो न, वह कैसा विश्रृंखल है। उसके शिथिल हाथोंसे मानो सव-कुछ गिरा जा रहा हो।"

लावण्यने जरा हँसकर कहा, "उन्हें अगर सव-कुछ पकड़के रखना पड़ता, उनके हाथसे अगर सव-कुछ खिसककर गिरता न रहता, तभी उनके लिए होती विपत्ति। उनका नियम है कि या तो वे पाकर भी न पायेंगे, या फिर पाते ही खो देंगे। जिसे पायेंगे उसे रखना ही होगा, यह उनकी प्रकृतिके साथ मेल ही नहीं खाता।"

"सच कहती हूँ, वेटी, उसका लड़कपन मुझे वहुत अच्छा लगता है।"

"यह माका धर्म है। बचपनकी जो भी कुछ जिम्मेदारी है, सब माकी है। और, लड़केके लिए जो भी कुछ है, सब खेल है। पर मुझे क्यों कह रही हो जिम्मेदारी लेनेको ?"

"देखती नहीं हो, लावण्य, उसका ऐसा उपद्रवी मन, आजकल बहुत कुछ शान्त-सा हो गया है। देखके मुझे बड़ी ममता होती है। कुछ भी कहो, वह तुमसे प्रेम करता है।"

"सो तो करते हैं।"

"तो फिर चिन्ताकी क्या बात है ?"

"मा, उनका जो स्वभाव है उसपर मैं जरा भी अत्याचार नहीं करना चाहती।"

"मैं तो यही जानती हूँ, लावण्य, प्रेम थोड़ा-बहुत अत्याचार चाहता ही है, और अत्याचार करता भी है।"

"किन्तु, मा, उस अत्याचारके लिए क्षेत्र होता है। परन्तु स्वभावपर पीड़न सहन नहीं होता। साहित्यमें प्रेम-सम्बन्धी पुस्तकें मैंने जितनी ही पढ़ी हैं उतनी ही यह बात बार-बार मेरे मनमें आई है कि प्रेमकी ट्रैजिडी (शोकान्तता) वहीं हुई है जहां परस्पर एक दूसरेको स्वतन्त्र समझकर आदमी सन्तुष्ट नहीं रह सका है। अपनी इच्छाको दूसरेकी इच्छा बनानेके लिए जहां जुल्म होता है वहां यही मनमें आता है कि दूसरेको अपनी तबीयतके माफिक बदलकर अनुकूल सृष्टि कर डालें।"

"सो तो, बेटी, दो जने मिलकर जहां घर-गृहस्थी बनाते हैं वहां परस्पर एक दूसरेकी थोड़ी-बहुत सृष्टि किये बिना काम ही नहीं चलता। जहां प्रेम है वहां सृष्टि आसान होती है, जहां नहीं है वहां हथौड़ी चलानेमें जिसे तुम 'ट्रैजिडी' कहती हो वही होता है।"

"जो आदमी घर-गृहस्थी बनानेके लिए ही तैयार किये गये हैं उनकी बात छोड़ दो। वे तो मिट्टीके आदमी होते हैं, दुनियादारीके रोजमर्राके दबावसे ही उनका गढ़ना-पीटना अपने-आप ही होता रहता है। किन्तु जो आदमी कतई मिट्टीका आदमी नहीं वह अपनी स्वाधीनताको किसी

भी तरह नहीं छोड़ सकता। जो नारी इस बातको नहीं समझती वह जितना ही दावा करती हैं, उतनी ही वंचित रहती है। इसी तरह जो पुरुष इतना नहीं समझता वह भी खींचातानी करके असल आदमीको खो बैठता है। मेरा विश्वास है कि अधिकांश क्षेत्रोंमें, जिसे हम पाना कहती हैं वह और-कुछ नहीं, हाथको जैसे हथकड़ी पाती है वैसा ही समझो।"

"तुम क्या करना चाहती हो, लावण्य ?"

"मैं व्याह करके उन्हें दुःख देना नहीं चाहती। व्याह सबके लिए नहीं होता। जानती हो, मा, जिनका मन वहमी होता है वे आदमीमेंसे कुछ-कुछ काट-छाँटकर उसे खंडित करके, अपने मनकी चीज चुन लिया करते हैं। लेकिन व्याहके जालमें फँसकर तो स्त्री-पुरुष बहुत ज्यादा नजदीक आ जाते हैं, बीचमें व्यवधान ही नहीं रहता, और तब बिलकुल पूरे आदमीसे कारबार करना पड़ता है, बिलकुल पास रहकर। कोई भी एक अंश वहाँ ढका नहीं रह सकता।"

"लावण्य, तुम अपनेको पहचानती नहीं। तुम्हें लेनेमें कुछ काटने छाँटने और अलग करनेकी जरूरत ही नहीं होगी।"

"पर वे तो मुझे नहीं चाहते, मैं जो साधारण स्त्री हूँ, घरकी नारी। उसे उन्होंने देखा हो, ऐसा तो मुझे नहीं मालूम होता। ज्योंही मैंने उनके मनको छुआ है त्योंही उनका मन अविराम और असीम बातें कर उठा है। उन बातोंसे वे बराबर मुझे गढ़ते चले गये हैं। उनका मन अगर थक गया, बातें अगर खतम हो गईं, तो उस नीरवतामें पकड़ाई देगी यह निहायत साधारण नारी, जो उनकी अपनी सृष्टि नहीं। व्याह करनेसे साथीको स्वीकार कर लेना पड़ता है, फिर उसमें गढ़ने-बनानेका अवकाश ही नहीं मिलता।"

"तुम्हें ऐसा मालूम होता है क्या कि अमित तुम जैसी लड़कीको भी पूरी तरह स्वीकार न कर सकेगा ?"

"स्वभाव अगर बदल जाय तो कर सकेंगे। किन्तु बदलें भी क्यों ? मैं तो ऐसा नहीं चाहती।"

"तुम क्या चाहती हो ?"

"जितने दिन बन सके, न-हो-तो उनकी बातोंके साथ, उनके मनके खेलके साथ घुल-मिलकर स्वप्न बनकर रहूँगी। और, उसे स्वप्न ही क्यों कहूँ ? वह मेरा एक विशेष जन्म है, एक विशेष रूप है, क्योंकि एक विशेष जगतमें वह सत्य होकर दिखाई दिया है। फिर चाहे वह कोपसे निकली हुई दो-चार दिनकी रंगीन तितली ही क्यों न हो, उसमें दोष क्या है। दुनियामें तितली और-किसीसे कुछ कम सत्य हो, ऐसी तो कोई बात नहीं, भले ही वह सूर्योदयके प्रकाशमें दिखाई दे और सूर्यास्तके झुटपुटेमें मर जाय, इससे क्या, सिर्फ इतना ही देखना है कि उतना समय व्यर्थ न हो जाय।"

"इतना तो समझ लिया कि तुम अमितके लिए क्षण-भरकी मायाके रूपमें ही रहीं। मगर, खुद ? तुम भी क्या व्याह करना नहीं चाहतीं ? तुम्हारे लिए अमित भी क्या माया है ?"

लावण्य चुप बैठी रही, कुछ जवाब नहीं दिया।

योगमाया कहने लगीं, "तुम जब बहस करती हो तब मैं समझ जाती हूँ कि तुम बहुत-किताब-पढ़ी-हुई लड़की हो। तुम्हारी तरह मैं सोच भी नहीं सकती, और न बात ही कर सकती हूँ। सिर्फ इतना ही नहीं, हो सकता है कि ऐन कामके मौकेपर भी इतनी कड़ी न रह सकूं। लेकिन बहसकी सँधमेंसे भी तो मैंने तुम्हें देखा है, बेटी। उस दिन रातके लगभग बारह बजे होंगे, देखा कि तुम्हारे कमरेमें बत्ती जल रही है, भीतर जाकर देखा कि अपनी टेबिलपर झुककर दोनों हाथोंपर मुंह रखके तुम रो रही हो। उस दिनकी वह लड़की तो फिलॉसॉफी-पढ़ी लड़की नहीं थी। एक बार सोचा कि सान्त्वना दूं, फिर सोचा कि सभी लड़कियोंको रोनेके दिनोंमें रो लेना चाहिए, उसे दबाने जाना व्यर्थ है। इस बातको मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम सृष्टि करना नहीं चाहतीं, प्रेम करना चाहती हो। आखिर, हृदय-मनसे सेवा न कर सकीं तो तुम जीओगी कैसे ? इसीसे तो कहती हूँ, उसे अपने पास बिना पाये तुम्हारा काम नहीं

चल सकता। सहसा ऐसा कोई प्रण न कर बैठना, बेटी, कि 'ब्याह न करूँगी।' एक बार तुम्हारे मनमें कोई जिद चढ़ जाय तो फिर तुम्हें सीधा नहीं किया जा सकता। डर तो मुझे इसी बातका है।"

लावण्य कुछ बोली नहीं। सिर झुकाये गोदपर साड़ीका पल्ला रखके उसे दबा-दबाकर अनावश्यक तह करने लगी। योगमाया कहने लगीं, "तुम्हें देखके मुझे कितनी ही बार ऐसा लगा है कि ज्यादा पढ़-पढ़के, ज्यादा सोच-सोचके, तुम्हारा मन बहुत ज्यादा सूक्ष्म हो गया है। तुमलोगोंने भीतर-ही-भीतर जो-सब भाव गढ़ लिये हैं हमलोगोंकी दुनिया उसके लायक नहीं। हमलोगोंके समयमें मनके जो प्रकाश अदृश्य थे, तुमलोग आज मानो उन्हें भी छुटकारा नहीं देना चाहतीं। वे आज देहके मोटे आवरणको भेदकर देहको मानो अगोचर किये दे रहे हैं। हमलोगोंके जमानेमें मनके मोटे-मोटे भावोंको लेकर संसारमें काफी सुख-दुःख था, और समस्याएँ भी कुछ कम नहीं थीं। पर तुमलोगोंने आज उन्हें इतना बढ़ा लिया है कि सहज-स्वभाविक अब कुछ रखा ही नहीं।"

लावण्य जरा हँस दी। अभी उस दिनकी बात है कि अमित अदृश्य प्रकाशकी बातें योगमायाको समझा रहा था। उसीसे यह युक्ति उनके दिमागमें आई है, यह भी तो सूक्ष्म है, योगमायाकी मा ये बातें इस तरह नहीं समझती थीं। लावण्यने कहा, "मा, कालकी गतिसे मनुष्यका मन जितनी ही स्पष्टतासे सब बातें समझता जायगा उतनी ही कठोरतासे वह उसके धक्के भी सहने लगेगा। अन्धकारका दुःख असह्य है, क्योंकि वह अस्पष्ट है।"

योगमायाने कहा, "आज मुझे मालूम हो रहा है कि तुम-दोनोंकी कभी भेंट ही न होती तो अच्छा होता।"

"नहीं-नहीं ऐसा मत कहो। जो हुआ है उसके सिवा और-कुछ हो सकता था, ऐसा मैं सोच ही नहीं सकती। किसी समय मेरा दृढ़ विश्वास था कि मैं बिलकुल ही शुष्क हूँ, किताबें पढ़ूंगी और परीक्षा पास करूंगी, इसी तरह मेरा जीवन बीत जायगा। किन्तु आज अकस्मात् देखा कि

मैं भी प्रेम कर सकती हूं। मेरे जीवनमें भी ऐसी असम्भव बात सम्भव हो गई, यही मेरे लिए काफी है। मालूम होता है अब तक मैं छाया थी, अब सत्य हो गई हूं। इससे ज्यादा और क्या चाहिए। मुझे ब्याह करनेको न कहना, मा।"

इतना कहकर लावण्य चौकीसे नीचे उतरकर योगमायाकी गोदमें सिर रखके रोने लगी।

९— गृह-परिवर्तन

शुरूमें सभीका खयाल था कि अमित पन्द्रह दिनके भीतर कलकत्ता लौट आयेगा। नरेन्द्र मित्रने जबरदस्त शर्त बदी थी कि 'सात दिन भी वहां नहीं बीत पायेंगे।' पर एक महीना गया, दूसरा महीना भी गया, लौटनेका नाम ही नहीं। शिलांगके मकानकी मियाद बीत चुकी थी। रंगपुरका कोई जमींदार आया और उसपर वह अपना दखल जमा बैठा। बहुत तलाश करनेके बाद योगमायाके मकानके पास एक झोंपड़ा-सा घर मिला है। किसी समय वह ग्वाला या मालीका घर था, उसके बाद वह एक क्लर्कके हाथ पड़ा, और तब उसमें गरीबी भद्रताका कुछ ताव लगा। वह क्लर्क भी मर चुका है, उसकी विधवा स्त्री अब उसे किरायेपर उठाती है। दरवाजे जंगलोंकी कंजूसीके कारण उस घरके अन्दर तेज-मरुत्-व्योम इन तीनों भूतोंका अधिकार संकुचित है, सिर्फ बरसातके दिनोंमें आशातीत प्राचुर्यके साथ केवल 'अप्' अवतीर्ण होता है, अस्थान छिद्रपथोंसे।

घरकी हालत देखकर योगमाया एक दिन चौंक उठीं। बोलीं, "बेटा, अपने ऊपर यह कैसी परीक्षा कर रहे हो?"

अमितने उत्तर दिया, "उमाकी थी निराहारकी तपस्या, और अन्तमें उन्होंने पत्ते खाना भी छोड़ दिया था। मेरी है यह निर-असबाबकी तपस्या। खाट-पलंग और टेबिल-कुरसी छोड़ते-छोड़ते अब लगभग शून्य दीवारतक नौबत आ पहुंची है। उमाकी तपस्या हुई थी [illegible]-पर्यन्त, और

मेरी हो रही है शिलांग-पहाड़पर। उसमें कन्याने माँगा था 'वर', इसमें वर माँग रहा है 'कन्या'। वहाँ नारद घटक थे, यहाँ स्वयं मौसीजी हैं। अव, अन्त तक अगर किसी कारणसे कालिदास न आ पहुंचे, तो लाचार होकर मुझे ही उनका काम यथासम्भव पूरा करना होगा।"

अमितने हँसते हुए ये वातें कहीं, किन्तु योगमायाके हृदयको चोट पहुँची। वे कहने-ही-वाली थीं कि 'चलो, हमारे ही घर चलके रहो', पर रुक गईं। सोचा कि विधाता एक काण्ड रच रहे हैं, उसमें हमलोगोंका हाथ लगनेसे कहीं असाध्य उलझन न पड़ जाय। उन्होंने अपने यहाँसे थोड़ा-वहुत सामान भेज दिया, और उसके साथ-साथ इस अभागेपर उनकी करुणा भी दूनी वढ़ गई। लावण्यसे उन्होंने वार-वार कहा, "वेटी लावण्य, मनको पत्थर न वनाये डालो।"

एक दिन, वहुत जोरकी वर्षाके वाद, योगमाया अमितकी खवर-सुव लेने गईं, तो देखा, चार पायेदार एक लचर टेविलके नीचे कम्वल विछाकर अमित अकेला वैठा कोई अंग्रेजी-किताव पढ़ रहा है। कोठरीमें जहाँ-तहाँ वरसातकी वूंदोंका असंगत आविर्भाव देखकर टेविलके नीचे उसने एक गुफा-सी वना ली थी, और उसके नीचे वह पैर फैलाकर वैठा था। पहले अपने-आप ही हँस लिया एक चोट, उसके वाद चलने लगी काव्यालोचना। मन दौड़ रहा था योगमायाके घरकी ओर, किन्तु शरीरने दी वाधा। कारण, जहाँ कोई जरूरत ही नहीं पड़ती उस कलकत्तेमें उसने खरीदी थी एक वहुत कीमती वरसाती, और जहाँ हमेशा ही उसकी जरूरत है वहाँ आते समय वह उसे लाना भूल गया था। एक छतरी साथ थी, उसे सम्भवतः एक दिन किसी संकल्पित गम्य-स्थानमें ही छोड़ आया है, और अगर ऐसा न हुआ हो तो वह शायद घरकी किसी वूढ़ी दीवारके नीचे कहीं पड़ी होगी। योगमाया घरमें घुसते ही वोलीं, "यह क्या हाल है, अमित ?"

अमित झटपट टेविलके नीचेसे वाहर निकल आया, वोला, "मेरा घर आज असम्वद्ध प्रलापमें उन्मत्त हो रहा है, इसकी दशा भी मुझसे कुछ ज्यादा अच्छी नहीं है।"

"असम्बद्ध प्रलाप ?"

"अर्थात्, घरके छप्परको करीब-करीब भारतवर्ष कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। उसके अंगों और प्रत्यंगोंमें परस्परके सम्बन्ध ढीले हो गये हैं। इसीसे ऊपरसे कोई उपद्रव होनेपर चारों तरफ विशृंखल अश्रुवर्षण होता रहता है, और बाहरकी तरफसे अगर कहीं आंधीकी झपट लगे तो सांय-सांय करके दीर्घश्वास चलने लगता है। मैंने तो प्रोटेस्टके तौरपर सिरके ऊपर एक मंच खड़ा कर रखा है, घरकी मिस-गवर्मेण्टके बीच निरुपद्रव होमरूलके दृष्टान्तके बतौर। पॉलिटिक्सकी एक मूल-नीति यहां प्रत्यक्ष मौजूद है।"

"मूल-नीति क्या है, बताओ तो समझूं।"

"यही कि जो घरवाला घरमें वास नहीं करता वह चाहे जितना बड़ा शक्तिशाली क्यों न हो, उसके शासनकी अपेक्षा जो गरीब अपने बसे-हुए घरमें रहता है उसकी गई-बीती हालत भी अच्छी है।"

आज लावण्यपर योगमायाको बहुत गुस्सा आया। अमितपर उनका स्नेह जितना ही गहराईके साथ बढ़ता जाता है उतना ही वे अपने मनमें उसकी मूर्ति खूब ऊंची बनाती चली जा रही हैं, 'इतनी विद्या, इतनी बुद्धि, इतनी परीक्षा-पास, और उसपर भी इतना सीधा-सादा मन! ढंगके साथ बात करनेकी कैसी असाधारण शक्ति है इसमें! और अगर चेहरेकी बात कहो, तो मेरी दृष्टिमें तो लावण्यसे इसका चेहरा ज्यादा सुन्दर लगता है। लावण्यका भाग्य अच्छा है, अमितने किसी ग्रहके फेरमें आकर इसे इस तरह मुग्ध-दृष्टिसे देखा है। ऐसे 'सोनेके चांद' जैसे लड़केको लावण्य इस कदर दुःख दे रही है! चटसे वह कह बैठी कि ब्याह नहीं करेगी। जैसे वह कोई राजराजेश्वरी हो! धनुष तोड़ने-की-सी प्रतिज्ञा! इतना अहंकार सहन कैसे होगा। मुहजलीको पीछे रो-रोकर मरना होगा।'

एक बार योगमायाने सोचा कि अमितको गाड़ीमें बिठाकर अपने घर ले जायें। फिर, न-जाने क्या सोचकर बोलीं, "जरा बैठो, बेटा, मैं अभी आ रही हूं।"

घर पहुँचते ही देखा कि लावण्य अपने कमरेमें सोफेपर आरामसे बैठी पैरोंपर दुशाला डाले गोर्कीकी 'मा' पढ़ रही है। उसकी इस आराम-तलबीको देखकर मन-ही-मन उनका गुस्सा और-भी बढ़ गया। बोलीं, "चलो जरा घूम आयें।"

लावण्यने कहा, "आज बाहर निकलनेको जी नहीं चाहता, मा।"

योगमाया ठीक समझ न सकीं कि लावण्यने स्वयं अपने आपसे भागकर पुस्तककी उस कहानीमें आश्रय लिया है। दोपहर-भर, खानेके बादसे ही, उसके मनमें एक तरहकी अस्थिर प्रतीक्षा-सी हो रही थी कि कब आये अमित। बार-बार मन उसका कह रहा है, अब आ ही रहे होंगे। बाहर जोरकी हवा चल रही है, उसके ऊधमसे पाइनके पेड़ छटपटा रहे हैं, और जबरदस्त वर्षासे हालके-पैदा-हुए झरने ऐसे चंचल हो उठे हैं कि मानो अपनी मियादके समयके साथ ही वे साँस रोकके दौड़ रहे हों। लावण्यके भीतर एक इच्छा अशान्त हो उठी है, वह चाहती है कि जाने दो, सब बाधाओंको टूट जाने दो। अमितके दोनों हाथ पकड़के वह कह देना चाहती है, 'जन्म जन्मान्तरमें मैं तुम्हारी ही हूँ।' आज कहना उसके लिए सहज है। सारा आकाश आज जान हथेलीपर रखकर हू-हू करके न-जाने क्या कह रहा है जिसका ठीक नहीं। उसीकी भाषासे आज वन-वनान्तरको भाषा मिल गई है, वर्षा-धारामें बचे-खुचे गिरिशृंग आज आकाशमें कान बिछाये खड़े हैं। इसी तरह कोई सुनने आये लावण्यकी बात, ऐसा ही बड़ा होकर स्तब्ध होकर, ऐसे ही उदार मनोयोगके साथ। किन्तु पहरपर पहर बीतते गये, कोई आया ही नहीं। ठीक मनकी बात कहनेका लग्न जो निकला जा रहा है। इसके बाद जब कोई आयेगा तब बात ही नहीं सूझेगी, तब संशय आ जायगा मनमें, तब ताण्डव-नृत्योन्मत्त देवताका 'माभैः' रव आकाशमें विलीन हो जायगा। वर्षके बाद वर्ष चुपचाप नीरवतामें बीत जाते हैं, उसके बीच वाणी एक दिन विशेष किसी प्रहरमें सहसा मनुष्यके द्वारपर आकर किवाड़ खटखटाती है। उसी समय किवाड़ खोलनेकी चाभी अगर ढूंढ़े नहीं मिली, तब फिर और किसी भी दिन मनकी बात अकुण्ठित

स्वरमें कहनेकी दैव-शक्ति नहीं जुट सकती। जिस दिन वह वाणी आती है उस दिन सारे संसारको एकत्र करके संवाद देनेकी इच्छा होती है कि 'सुन लो तुमलोग, मैं प्रेम करती हूं। 'मैं प्रेम करती हूं', यह वात अपरिचित सिन्धु-पारगामी पक्षीकी तरह, न-जाने कितने दिनोंसे, कितनी दूरसे आ रही है ! इसी वातके लिए तो मेरे हृदयमें मेरे इष्टदेवता इतने दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे। उस वातने आज मुझे स्पर्श किया है। मेरा सारा जीवन, मेरा सम्पूर्ण जगत सत्य हो उठा है आज।' – तकियामें मुंह छिपा कर लावण्य आज किससे ऐसी वातें करने लगी – 'सत्य है, सत्य है, इतना सत्य और-कुछ भी नहीं।'

समय चला गया, अतिथि नहीं आया। प्रतीक्षाके भारी वोझसे छातीके भीतर दर्द होने लगा, वरामदेमें जाकर लावण्य थोड़ा-सा भीग आई पानीकी वौछार लगाकर। उसके वाद एक गहरे अवसादने आकर उसके मनको ढक दिया एक निविड़ निराशासे। ऐसा लगा कि उसके जीवनमें जो-कुछ जलनेका था वह सिर्फ एक वार भक-से जलकर फिर वुझ गया, सामने कुछ भी नहीं है। अमितको अपने भीतरके सत्यकी दुहाई देकर सम्पूर्ण रूपसे स्वीकार कर लेनेका साहस उसका जाता रहा। वहुत देर तक चुपचाप पड़े रहनेके वाद अन्तमें टेविलसे किताव उठा ली। कुछ समय लगा उसमें मन लगानेमें, उसके वाद कहानीकी धारामें प्रवेश करके कव अपनेको भूल गई, उसे मालूम भी नहीं पड़ा।

इतनेमें योगमायाने वुलाया घूमने जानेके लिए। उसे उत्साह ही नहीं हुआ जानेका।

योगमाया एक कुरसी खींचकर लावण्यके सामने वैठ गईं, और अपनी दीप्त दृष्टि उसके मुंहपर रखती हुई वोलीं, "सच्ची वात वताओ, लावण्य, तुम क्या अमितसे प्रेम करती हो ?"

लावण्य जल्दीसे उठके वैठ गई, वोली, "ऐसी वात क्यों पूछ रही हो, मा ?"

"अगर नहीं प्रेम करतीं, तो उसे साफ-साफ कह क्यों नहीं देतीं? निष्ठुर हो तुम, अगर नहीं चाहती हो तो उसे पकड़के मत रखो।" –

लावण्यके छातीके भीतर उफान-सा उठने लगा, उसके मुंहसे बात नहीं निकली।

–"अभी-अभी उसकी जो दशा देख आई हूँ मैं, छाती फटती है मेरी तो। ऐसे, भिखारीकी तरह, किसके लिए यहाँ पड़ा है वह! उस जैसा लड़का जिसे चाहता है वह कितनी बड़ी भाग्यवती है, सो क्या बिलकुल ही नहीं समझ सकतीं तुम?"

कोशिश करके रुँधे-हुए गलेकी बाधाको दूर करती हुई लावण्य कह उठी, "मेरे प्रेम करनेकी बात पूछ रही हो, मा? मैं तो सोच ही नहीं सकती कि ऐसी कोई दुनियामें है जो मुझसे भी ज्यादा प्रेम कर सकती है। प्रेममें मैं तो मर सकती हूँ। इतने दिनोंसे मैं ज़ो-कुछ थी, उसका सब-कुछ लुप्त हो गया है। अबसे मेरा फिरसे आरम्भ हो रहा है, इस आरम्भका अन्त नहीं है। मेरे अन्दर यह कितना बड़ा आश्चर्य है, सो मैं किसीको कैसे समझाऊँ! और-किसीने क्या इस तरहसे जाना है?"

योगमाया आश्चर्यसे अवाक् हो गईं। हमेशासे देखती आई हैं लावण्य में गहरी शान्ति, इतना बड़ा दुःसह आवेग उसमें कहाँ छिपा था अब तक? उससे वे धीरेसे बोलीं, "बेटी लावण्य, अपनेको दबा-छिपाकर मत रखो। अमित अँधेरेमें तुम्हें ढूंढ़ता फिर रहा है, पूरी तरह तुम अपनेको उसके आगे जता दो, डरती क्यों हो, डरो मत। जो प्रकाश तुम्हारे अन्दर जल रहा है वह प्रकाश अगर उसकी दृष्टिमें भी प्रकट हो जाता तो उसके लिए फिर कोई अभाव ही न रह जाता। चलो, बेटी, तुम अभी चलो मेरे साथ।"

और दोनों अमितके घर चल दीं।

१०– द्वितीय साधना

अमित उस समय भींगी चौकीपर पुराने अखवारोंकी रद्दी लादकर उसके ऊपर वैठा था। टेविलपर एक दस्ता फूलस्केप कागज रखके उसकी लिखाई चल रही थी। ठीक इसी समय उसने अपनी विख्यात आत्म-जीवनी लिखना शुरू किया था। कारण पूछनेपर वह कहता कि ठीक इसी समय उसका जीवन अकस्मात् उसकी अपनी दृष्टिमें दिखाई दिया नाना रंगोंमें रंगा हुआ, वदलीके दूसरे दिनके सवेरेके शिलांग-पहाड़के समान इसी दिन अपने अस्तित्वका एक मूल्य मिला था उसे, इस वातको प्रकट वगैर किये वह रह कैसे सकता है? अमित कहता है, मनुष्यकी मृत्युके वाद उसकी जीवनी लिखी जाती है, इसकी वजह यह है कि एक ओर संसारमें वह मरता है और दूसरी ओर मनुष्यके मनमें वह निविड़ होकर जी उठता है। अमितके मनका भाव यह है कि जव वह शिलांगमें था तव एक ओर वह मरा था, उसका अतीत मरीचिकाकी तरह विलीन हो गया था, इसी तरह दूसरी ओर वह तीव्र होकर जी उठा था, और पीछेके अन्धकारपर उज्ज्वल प्रकाश की तसवीर प्रकट हो उठी थी। इस प्रकाशके संवादको रख जाना चाहिए। क्योंकि संसारमें वहुत कम आदमियोंके भाग्यमें ऐसा वदा होता है। असल में वे जन्मसे लेकर मृत्युकाल तक प्रदोपकी छायामें ही अपना जीवन विता जाते हैं, उस चमगादड़की तरह जिसने गुफामें अपना घोंसला वनाया है।

उस समय थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी, आँधीकी हवा वन्द हो चुकी थी, और वादल पतले हो आये थे।

अमित चौकी छोड़कर उठ खड़ा हुआ, वोला, "यह कैसा अन्याय है, मौसीजी!"

"क्यों, वेटा, क्या किया मैंने?"

"मैं जो विलकुल ही तैयार न था। श्रीमती लावण्य अपने मनमें क्या सोचेंगी?"

"श्रीमती लावण्यको तो जरा सोचने देना ही आवश्यक है। जो

जाननेकी बात है उसे पूरी तरह जान लेना अच्छा है। इसमें श्रीमान् अमितको इतनी आशंका क्यों ?"

"श्रीमान्का जो-कुछ ऐश्वर्य है वही श्रीमतीको जतानेका है। और श्रीहीनका जो दैन्य है उसे जाननेके लिए तुम हो, मेरी मौसीजी।"

"ऐसी भेद-बुद्धि क्यों, बेटा ?"

"अपनी गरजसे ही है। ऐश्वर्यसे ही ऐश्वर्यपर दावा किया जाता है, और अभावसे चाहता हूँ आशीर्वाद। मानव-सभ्यतामें लावण्य देवियोंने जगाया है ऐश्वर्य, और मौसियोंने दिया है आशीर्वाद।"

"देवी और मौसी दोनोंको एकसाथ ही पाया जा सकता है, अमित, अभावको ढकनेकी जरूरत नहीं पड़ती।"

"इसका जवाब कविकी भाषामें देना पड़ेगा। गद्यमें जो-कुछ कहता हूँ, उसे स्पष्ट समझानेके लिए छन्दके भाष्यकी जरूरत पड़ती है। मैथ्यू अर्नल्डने काव्यको बताया है 'क्रिटिसीज्म ऑफ् लाइफ़'।[1] मैं उस वाक्यको जरा संशोधन करके कहना चाहता हूँ 'लाइफ़'स् कॉमेण्टरी इन वर्स'।[2] अतिथि-विशेषको पहले ही से जताये रखता हूँ कि मैं जो पढ़ रहा हूँ वह किसी कवि-सम्राट्का लिखा हुआ नहीं है —

परिपूर्ण मनकी चाहना हो
कुछ माँगनेकी कामना हो,
माँगो भले ही जा कहीं,
पर हाथ हों खाली नहीं,
आँख हों आली नहीं।

सोच देखियेगा, प्रेम ही पूर्णता है, उसकी जो आकांक्षा है वह तो दरिद्र का कंगलापन नहीं। देवता जब भक्तको प्यार करते हैं तभी वे आते हैं भक्तके द्वारपर भीख माँगने।

---

१ जीवनकी समालोचना या गुण-दोष-विवेचन।
२ छन्दमें जीवन-भाष्य अर्थात् कवितामें जीवनकी व्याख्या।

गलेकी रत्नमाला ही
बनेगी वरमाला जब
बदल लूंगा माला तब।
क्या नहीं बिछाओगी
देवीका आसन तुम
राहके किनारे एक
सूनी सूखी धूलपर?

इसीलिए तो फिलहाल देवीको जरा हिसाबसे घरमें प्रवेश करनेको कहा था। बिछानेको कुछ है ही नहीं, तो बिछाऊं क्या? ये भींगे अखबार? आजकल सम्पादकीय स्याहीके दागोंसे मैं सबसे ज्यादा डरता हूँ। कवि कहते हैं, 'बुलाने योग्य आदमीको तब बुलाता हूँ जब जीवनका प्याला छलक उठता है, उसे तृष्णामें शरीक होनेको नहीं बुलाता।'

चैतकी हवामें फूल
खिले हों वन-विथिकामें,
रखना बाँध प्रियतमको
अपनी हृदय-वाटिकामें,
जलती हो दीप-माला
दीप्त लक्ष शिखामें जब
निशीथ-अन्धकारमें।

मौसियोंकी गोदमें जीवनके प्रारम्भमें ही मनुष्यकी प्रथम तपस्या होती है दरिद्रताकी, नग्न संन्यासीकी स्नेह-साधना। इस कुटियामें उसीका कठोर आयोजन है। मैंने तो तय कर रखा है कि इस कुटियाका नाम रखूंगा, 'मौसेरा बंगला'।"

"बेटा, जीवनकी दूसरी तपस्या है ऐश्वर्यकी, देवीको बाईं ओर लेकर प्रेम-साधना। इस कुटियामें भी तुम्हारी वह साधना गीले कागजोंके नीचे दब नहीं जायगी। 'वर नहीं मिला' कहके अपनेको बहला रहे हो। किन्तु मनमें निश्चित जानते हो कि मिल चुका है।"

इतना कहकर उन्होंने लावण्यको अमितकी बगलमें खड़ा किया और उसका दाहिना हाथ अमितके दाहिने हाथपर रख दिया। फिर लावण्यके गलेसे सोनेका हार खोलकर उससे दोनोंके हाथ बाँधती हुई बोलीं, "तुम दोनोंका मिलन अक्षय बना रहे।"

अमित और लावण्य दोनोंने मिलकर योगमायाके पाँव छुए और पद-धूलि सिरसे लगाते हुए प्रणाम किया। योगमायाने कहा, "तुमलोग बैठो जरा, मैं बगीचेसे कुछ फूल ले आऊँ।"

इतना कहकर वे फूल लेने चली गईं। बहुत देर तक दोनों खाटपर आस-पास चुप बैठे रहे। किसी एक समय अमितके मुंहकी ओर मुंह उठाकर लावण्यने मृदु स्वरमें कहा, "आज तुम दिन-भर आये क्यों नहीं ?"

अमितने उत्तर दिया, "कारण इतना ज्यादा तुच्छ है कि आजके दिन उसे मुंहसे कहनेके लिए साहसकी जरूरत है। इतिहासमें कहीं भी ऐसा लिखा नहीं मिलता कि हाथके पास 'बरसाती' न मिलनेसे बदलीके दिन किसी प्रेमीने प्रियाके पास जाना मुलतवी रखा हो।' बल्कि, तैरकर अगाध जल-भरी नदी पार करके पहुँचनेकी बात तो लिखी है। किन्तु, वह है अन्तरका इतिहास, वहाँके समुद्रमें मैं भी क्या नहीं तैर रहा समझती हो ? उस अपारको क्या कभी पार कर सकूंगा ?

For we are bound where mariner has not yet
dared to go,
And we will risk the ship, ourselves and all.

हम जायेंगे वहीं
जहाँ साहससे
नाविक कोई गया नहीं,
डूबें तो डूब जायें,
हम भी और नाव भी,
इसकी परवाह नहीं।

बन्या, मेरे लिए आज तुमने प्रतीक्षा की थी ?"

"हां, मीता, वर्षाकी रिमझिममें आज दिन-भर तुम्हारे पैरोंकी आहट सुनती रही हूँ। मालूम होता था कि इतने असम्भव-दूरसे आ रहे हो तुम कि जिसका ठीक नहीं। आखिर आ ही पहुँचे मेरे जीवनमें।"

"वन्या, अब तक मेरे जीवनके बीचो-बीच तुम्हें न-जाननेका एक बड़ा भारी काला गड्ढा था। वहीं था सबसे ज्यादा भद्दा। आज वह ऊपर तक भर आया है, और उसके ऊपर उजाला झलमला रहा है, सम्पूर्ण आकाश की छाया पड़ती है उसपर, और आज वही जगह हो गई है सबसे बढ़कर सुन्दर। यह जो मैं लगातार बात करता ही चला जा रहा हूँ, यह है उस परिपूर्ण प्राण-सरोवरकी तरंग-ध्वनि, इसे रोक कौन सकता है!"

"मीता, तुम आज दिन-भर क्या कर रहे थे?"

"मनके बीचो-बीच तुम थीं, बिलकुल निस्तब्ध। तुमसे कुछ कहना चाहता था, पर कहाँ, बात थी कहाँ! आकाशसे पानी पड़ रहा था और मैं बराबर यही कह रहा था, 'वाणी दो, वाणी दो!' –

O what is this?
Mysterious and uncapturable bliss
That I have known, yet seems to be
Simple as breath and easy as a smile,
And older than the earth.

कैसा रहस्य यह, कैसा आनन्द-पुंज!
जाना है उसे मैंने, पाया नहीं पाकर भी।
फिर भी उस हृदयमें उठती उसास है,
पृथिवी-सा पुराना और स्वभाव-सा सहज वह
सरलताका हास है।

बैठा-बैठा यही करता रहता हूं। दूसरोंकी बातको अपनी बात बनाया करता हूं। अगर कहीं सुर दे सकता तो सुर लगाकर विद्यापतिके वर्षाके गीतको ज्यों-का-त्यों हड़प कर जाता —

विद्यापति कहे, कैसे गँवायवि
हरि बिन दिन-रतियाँ।

जिसके विना चल नहीं सकता उसे पाये विना कैसे दिन वीतेंगे, ठीक इस वातका सुर पाऊं कहांसे ? ऊपरकी ओर ताककर कभी कहता हूं, 'वाणी दो', कभी कहता हूं, 'सुर दो।' वाणी लेकर, सुर लेकर देवता उतर भी आते हैं, पर रास्तेमें आदमी पहचाननेमें भूल कर वैठते हैं, खामखाह और किसीको दे देते हैं। हो सकता है कि तुम्हारे उस रवि ठाकुरको दे वैठे हों।"

लावण्यने हँसके कहा, "रवीन्द्रनाथको जो चाहते हैं वे भी तुम्हारी तरह वार-वार इतना याद नहीं करते उन्हें।"

"वन्या, आज मैं वहुत ज्यादा वक रहा हूं, न ? मेरे अन्दर वकवासका मॉनसून उतर आया है। वेदर-रिपोर्ट अगर रखो, तो देखोगी कि एक-एक दिनमें कै-कै इन्च पागलपन करता हूँ, कुछ ठीक नहीं। कलकत्ता होता तो तुम्हें मोटरमें लेकर टायर फाड़ता हुआ सीधा मुरादावाद भाग जाता। अगर पूंछती कि मुरादावाद क्यों, तो उसका कोई कारण नहीं वता पाता। वाढ़ जव आती है तव वह वकती है, दौड़ती है, समयको हँसते-हँसते फेनकी तरह वहा ले जाती है।"

इतनेमें योगमाया डाली भरकर सूर्यमुखी फूल ले आईं। वोलीं, "वेटी लावण्य, इन फूलोंसे आज तुम अमितको प्रणाम करो।"

यह और-कुछ नहीं, एक अनुष्ठानके भीतरसे हृदयके भीतरकी चीजको वाहर 'शरीर' देनेकी जनानी कोशिश है। 'देह'को वनाकर खड़ी करनेकी आकांक्षा स्त्रियोंके रक्त-मांसमें भरी पड़ी है।

आज किसी एक समय अमितने लावण्यके कानमें कहा, "वन्या, मैं तुम्हें एक अंगूठी पहनाना चाहता हूँ।"

लावण्यने कहा, 'क्या जरूरत है, मीता ?"

"तुमने जो मुझे अपना यह हाथ दिया है, वह कितना दिया है, सो मैं सोचके खतम नहीं कर पाता। कवियोंने प्रियाके मुंहका ही वर्णन किया है। पर हाथोंमें हृदयका कितना इशारा है ! प्रेमका जो-भी कुछ लाड़-प्यार और जो-भी कुछ सेवा है, हृदयका जितना भी दरद और जितनी भी अनिर्वचनीय भाषा है, यह सव तो इन्हीं हाथोंमें है। मेरी अंगूठी तुम्हारी

उंगलीसे लिपटी रहेगी, मेरे मुंहकी एक छोटी-सी वातकी तरह, वह वात सिर्फ इतनी ही कि 'पा गया'। मेरी यह वात सोनेकी भाषामें माणिककी भाषामें तुम्हारे हाथमें वनी रहेगी।"

लावण्यने कहा, "अच्छा, पहना देना।"

"कलकत्तासे मँगाऊंगा, वताओ कौन-सा पत्थर तुम्हें पसन्द है?"

"मैं कोई भी पत्थर नहीं चाहती, एक मोती हो तो काफी है।"

"अच्छा, ठीक है। मैं भी मोती पसन्द करता हूं।"

११– मिलन-तत्त्व

तय हो गया, आगामी अगहन महीनेमें इनका व्याह होगा। योगमाया कलकत्ता जाकर सव तैयारियाँ करेंगी।

लावण्यने अमितसे कहा, "तुम्हारी कलकत्ता जानेकी मियाद तो वहुत दिन हुए खतम हो चुकी है। अनिश्चितके वन्धनमें वँधे-हुए तुम्हारे दिन वीत रहे थे। अव छुट्टी है। विना किसी संशयके चले जाओ। व्याहसे पहले अव हम-दोनोंकी भेंट न होगी।"

"इतना कड़ा शासन क्यों?"

"उस दिन जिस सहज-आनन्दकी वात कही थी तुमने, उसे सहज वनाये रखनेके लिए।"

"यह तो वहुत ही गहरे ज्ञानकी वात हुई। उस दिन तुम्हें मैंने कवि समझकर सन्देह किया था, आज सन्देह करता हूँ कि तुम दार्शनिक हो। खूव कहा! सहजको सहज वनाये रखनेके लिए कठोर होना पड़ता है। छन्दको सहज करना हो तो यतिको ठीक जगहपर कसके रखना होगा। लोभ ज्यादा है, इसीसे जीवनके काव्यमें कहीं भी यति देनेको जी नहीं चाहता, और, छन्द टूट जानेसे जीवन हो जाता है गीत-हीन वन्धन। अच्छा, कल ही चला जाऊंगा, एकदम अकस्मात् इन भरे-पूरे दिनोंके वीचसे। ऐसा लगेगा जैसे 'मेघनाद-वध' काव्यकी चौंककर खड़ी हो जानेवाली कड़ी हो—

चला गया जब यमपुरको
अकालमें !

शिलांगसे मान लो कि चला गया, पर पत्रामेंसे अगहनका महीना तो फर्र-से उड़ नहीं जायगा। कलकत्ता जाकर क्या करूँगा, जानती हो?

"क्या करोगे?"

"मौसीजी जब तक व्याहके दिनोंकी तैयारियाँ करेंगी, मुझे तब तक कर लेना पड़ेगा उसके बादके दिनोंके लिए आयोजन। लोग इस बातको भूल जाते हैं कि दाम्पत्य एक कला है, आर्ट, प्रतिदिन उसकी नये-नये ढंगसे रचना करते ही रहना चाहिए। याद है, बन्या, 'रघुवंश'में महाराजा अजने इन्दुमतीका कैसा वर्णन किया है?"

लावण्यने कहा, "प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।"

अमितने कहा, "वह ललित कलाविधि तो दाम्पत्यकी ही है। अधिकांश बर्बर व्याहको ही समझ लेते हैं मिलन, इसीसे उसके बादसे मिलनकी इतनी अवहेलना होने लगती है।"

"मिलनकी कला तुम्हारे मनमें कैसी है, समझा दो। अगर मुझे शिष्या करना चाहते हो, तो आज ही उसका पहला पाठ शुरू हो जाय।"

"अच्छा तो सुनो। इच्छाकृत बाधासे ही कवि छन्दकी सृष्टि करता है। मिलनको भी सुन्दर करना पड़ता है इच्छाकृत बाधासे। बहुमूल्य वस्तुको इतनी सस्ती कर देना कि चाहते ही मिल जाय, अपनेको ही ठगना है। क्योंकि कड़ी कीमत देनेका आनन्द भी कुछ कम नहीं होता।"

"कीमतका कुछ हिसाब भी तो सुनूं।"

"ठहरो, उसके पहले मेरे मनमें जो तसवीर बस रही है उसे बता दूं। गंगाका तट है, बगीचा है, डायमण्डहरबरकी तरफ। एक छोटे-से 'स्टीमलंच'पर बैठकर वहाँसे दो घंटेमें कलकत्तेसे आना-जाना हो सकता है।"

"इसमें कलकत्तेकी क्या जरूरत आ पड़ी?"

"अभी कोई जरूरत नहीं, सो तुम जानती हो। जाता जरूर हूं बार-लाइब्रेरीमें, पर रोजगार नहीं करता, शतरंज खेला करता हूं। अटर्नियोंने

समझ लिया है कि कामकी कोई गर्ज नहीं, इसीसे उधर ध्यान नहीं। आपस के फैसलेका कोई मुकदमा होता है तो वे उसका ब्रीफ मुझे देते हैं, उससे ज्यादा और कुछ नहीं देते। पर, व्याहके बाद ही दिखा दूंगा कि काम किसे कहते हैं! जीविकाकी आवश्यकताके लिए नहीं, जीवनकी आवश्यकताके लिए। आमके भीतर रहती है गुठली, वह न तो मीठी है, न नरम है और न खानेकी चीज है, – किन्तु वह कठोर ही सारे आमका आश्रय है, उसीपर वह आकार पाता है। कलकत्ता पथरीली गुठली है। अब समझ गई होगी कि उसकी किस लिए जरूरत है। मधुरके भीतर एक कठिनको रखनेके लिए।"

"समझ गई। तब तो मेरे लिए भी जरूरत है। मुझे भी कलकत्ता जाना होगा, दससे पाँच तक काम बजाने।"

"बुराई क्या है। लेकिन मुहल्ला घूमने नहीं, सचमुच काम करनेके लिए।"

"कौनसा काम, बताओ? बगैर तनखाका?"

"नहीं नहीं, बगैर तनखाका काम न तो काम है न छुट्टी, बारह-आने धोखाबड़ी है। चाहो तो तुम लड़कियोंके कालेजमें प्रोफेसरी कर सकती हो।"

"अच्छा, चाहूंगी। उसके बाद?"

"मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, गंगाका किनारा है, नीचेसे उठा है एक जटाओं वाला बहुत पुराना बड़का पेड़। धनपति जब गंगाके रास्ते सिंहल गया था तब शायद उसने इसी बरगदसे नाव बाँधकर पेड़-तले रसोई बनाई थी। उसके दक्षिणी किनारेपर काई-शुदा पक्का घाट है, जिसमें दरारें पड़ गई हैं और कहीं-कहींसे कुछ-कुछ धँस भी गया है। उस घाटमें हरे और सफेद रंगकी हमारी हलकी-सी नाव बँधी हुई है। उसकी नीली पताकापर सफेद अक्षरोंमें नाम लिखा हुआ है। – क्या नाम है, तुम ही बता दो।"

"बताऊँ? – 'मिताई'।"

"ठीक नाम हुआ है 'मिताई'। मैंने सोचा था 'सागरी', मनमें जरा गर्व भी हुआ था। पर तुम्हारे आगे हार माननी पड़ी।····वगीचेके वीचसे एक पतली खाड़ी निकल गई है, गंगाके हृदय-स्पन्दनके भीतरसे। उसके उस पार है तुम्हारा घर, और इस पार मेरा।"

"रोज ही तुम क्या तैरकर पार हुआ करोगे, और खिड़कीमें मैं अपना दीआ जला रखा करूंगी?"

"तैरूंगा मन-ही-मन, काठके सेतुके ऊपरसे। तुम्हारे घरका नाम है 'मानसी', और मेरे घरका कोई नाम तुम्हें रखना होगा।"

"दीपक।"

"वहुत अच्छा! नामके लायक एक दीप अपने घरकी चोटीपर विठा दूंगा। मिलनकी संध्यामें उसमें जलेगी लाल वत्ती, और विच्छेदकी रातमें नीली। कलकत्तेसे वापस आकर रोज तुम्हारी तरफसे एक चिट्ठीकी आशा करूंगा। ऐसा होना चाहिए कि वह चिट्ठी पा भी सकूं, और न भी पा सकूं। रातके आठ वजे तक अगर न पाऊं, तो दुर्भाग्यको अभिशाप देकर वर्ट्रण्ड रसलकी 'लॉजिक' पढ़नेकी कोशिश करूँगा। हमारा नियम होगा कि मैं तुम्हारे घर अनाहूत कदापि न जा सकूंगा।"

"और तुम्हारे घर में?"

"ठीक एक ही नियम हो तो अच्छा है, किन्तु वीच-वीचमें नियमका व्यतिक्रम होता रहे तो वह असह्य न होगा।"

"नियमका व्यतिक्रम ही अगर नियम न हो उठे तो तुम्हारे घरकी दशा क्या होगी, जरा सोच देखो। वल्कि यह अच्छा होगा कि वुरका ओढ़के आया करूंगी मैं।"

"सो भले ही हो, पर मुझे निमन्त्रणकी चिट्ठी चाहिए ही। उस चिट्ठीमें और कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं, सिर्फ किसी एक कवितासे दो-चार लाइन मात्र लिख देना काफी है।"

"और, तुम्हारी तरफसे मेरा निमन्त्रण वन्द रहेगा? मेरा क्या जाति-वहिष्कार?

"तुम्हें महीनेमें एक दिन निमन्त्रण मिलेगा, पूर्णिमाकी रातको। चौदह तिथियोंकी खण्डता जिस दिन चरम पूर्ण हो उठेगी।"

"अब तुम अपनी 'प्रियशिष्या'को एक चिट्ठीका नमूना दो।"

"अच्छी बात है।" – जेबमेंसे एक नोटबुक निकालकर उसका एक पन्ना फाड़कर उसपर उसने लिख दिया :—

"Blow gently over my garden
Wind of the southern sea
In the hour my love cometh
And calleth me.
चूमके जाना तुम
मेरी वन-भूमिको
दक्षिण-समुद्रके मेरे मृदु समीरण,
उसी शुभ-घड़ीमें जब
आयें मेरे प्रियतम,
बुलायेंगे मुझे वे ले-ले नाम अकारण।"

लावण्यने कागज लौटाया नहीं।

अमितने कहा, "अब तुम अपनी चिट्ठीका नमूना दो, देखूं तुम्हारी शिक्षा कहाँ तक आगे बढ़ी?"

लावण्य एक कागजके टुकड़ेपर कुछ लिखने जा रही थी, अमितने कहा, "नहीं, मेरी इस नोटबुकमें लिखो।"

लावण्यने लिख दिया :—

"मीता, त्वमसि मम जीवनं, त्वमसि मम भूषणं,
त्वमसि मम भव-जलधि-रत्नम्।"

अमितने नोटबुकको जेबमें रखते हुए कहा, "आश्चर्यकी बात है, मैंने लिखी है नारीके मुंहकी बात, और तुमने लिखी है पुरुषकी! असंगत कुछ भी नहीं हुआ। सेमलकी लकड़ी हो या बबूलकी, जब जलती है तो आगका चेहरा एकसा ही हो जाता है।"

लावण्य वोली, "निमंत्रण तो दे दिया, उसके वाद ?"

अमितने कहा, "संध्या-तारा उदित हुए हैं, ज्वार आई है गंगामें, झाऊ के पेड़ोंके ऊपरसे हवा निकल गई साँय-साँय करके, वूढ़े वरगदकी जड़से गंगाका स्रोत्त टकराने लगा। तुम्हारे घरके पीछे पद्म-सरोवर है, वहाँ पीछेके दरवाजेके निर्जन घाटपर नहा-धोकर तुम वाल सँवार रही हो। तुम्हारे अलग-अलग दिनके कपड़े अलग-अलग रंगके होंगे। वहाँ मैं यह सोचता-सोचता जाऊंगा कि आजकी संध्याका क्या रंग होगा। मिलनकी जगहका भी कोई ठीक न रहेगा। किसी दिन चम्पाके नीचेवाले चवूतरेपर, किसी दिन छतपर, किसी दिन गंगा-किनारेके खुले वरंडेमें मिलन हुआ करेगा। मैं गंगामें नहाकर सफेद मलमलकी धोती और ऊपरसे चादर ओढ़ूंगा, पाँवोंमें होगी हाथी-दाँतकी कामदार खड़ाऊँ। जाकर देखूंगा कि तुम गलीचा विछाये वैठी हो, सामने चाँदीकी रकावीमें मोटी फूल-माला रखी है, चन्दनकी कटोरीमें चन्दन है, और एक कोनेमें धूपदानमें जल रही है धूप। पूजाकी छुट्टियोंमें कम-से-कम दो महीनेके लिए दोनों जने घूमने जायेंगे। पर, दोनों दो जगह। तुम अगर जाओगी पहाड़पर तो मैं जाऊंगा समुद्रकी तरफ। — यह है हमारे दाम्पत्य-राज्यकी नियमावली, तुम्हारे सामने पेश कर दी गई है। अव तुम्हारी क्या राय है, वताओ ?"

"मान लेनेको राजी हूं।"

"मान लेना और मनमें लेना, दोनोंमें जो फर्क है, वन्या !"

"तुम्हें जिसकी जरूरत है मुझे उसकी जरूरत न भी रहे, तो भी मैं उसमें आपत्ति न करूंगी।"

"जरूरत नहीं है तुम्हें ?"

"नहीं। तुम मेरे चाहे जितने ही पास क्यों न रहो, फिर भी मुझसे वहुत दूर हो। किसी नियमके द्वारा उस दूरीको कायम रखना मेरे लिए वाहुल्य-मात्र है। किन्तु मैं जानती हूं, मेरे अन्दर ऐसी कोई भी चीज नहीं जो तुम्हारी निकट-दृष्टिको विना लज्जाके सह सके, इसीलिए दाम्पत्यमें दो तटोंपर दो विभाग कर देना मेरे लिए निरापद है।"

अमित चौकीसे उठ खड़ा हुआ, बोला, "तुमसे मैं हार नहीं मान सकता, वन्या। जाने दो मेरे बगीचेको। कलकत्तेसे बाहर मैं एक कदम भी न हिलूंगा। निरंजनके आफिस-वाले मकानमें ऊपरकी एक मंजिल पचहत्तर रुपये महीनेमें किरायेपर ले लूंगा। वहां रहोगी तुम, और वहीं रहूंगा मैं। चित्ताकाशमें पास और दूरका कोई भेद नहीं। साढ़े-तीन हाथ चौड़े विस्तरपर बाईं तरफ तुम्हारा विभाग रहेगा 'मानसी', और दाहिनी तरफ मेरा विभाग रहेगा 'दीपक'। कमरेकी पूरववाली दीवारसे सटा हुआ एक ड्रॉवरवाला आईना रहेगा, उसमें तुम भी मुंह देखोगी और मैं भी। पश्चिमकी तरफ रहेगी किताबोंकी आलमारी, पीठसे वह धूप रोकेगी और सामनेकी तरफ उसमें रहेगी दो पाठकोंकी एकमात्र सर्क्युलेटिंग-लाइब्रेरी। कमरेके उत्तरकी तरफ एक सोफा रहेगा, उसके बाईं तरफ थोड़ी-सी जगह छोड़कर एक किनारेसे मैं बैठूंगा, और अपनी कपड़ोंकी अरगनीकी ओटमें तुम खड़ी होगी, दो हाथ दूर। निमंत्रणकी चिट्ठी मैं ऊपरकी ओर उठाऊंगा कांपते-हुए हाथसे, उसमें लिखा रहेगा :—

मेरी छतपर चुपके-चुपके
वहा करे दक्षिणी पवन,
हो जाय प्रेयसीसे मेरी
आंख-चारकी प्रिय चितवन।

क्या यह सुननेमें बुरी लगी, वन्या?"

"जरा भी नहीं, मीता। पर यह संग्रह कहांसे की गई है?"

"अपने एक मित्र नीलमाधवकी कापीसे। उसकी भावी प्रेयसी तब अनिश्चित थी। उसीको लक्ष्य करके उसने इस अंग्रेजी कविताको कलकतिया ढांचेमें ढाला था, साथमें मैं भी शरीक था। इकॉनॉमिक्समें एम० ए० पास करके नगद पन्द्रह हजार और अस्सी तोले सोनेके गहनोंका दहेज लेकर हजरत नव-वधूको घर लाये थे। चार आंखोंकी प्रिय चितवन भी हुई और दक्षिणी हवा भी वहती रही, किन्तु वेचारा अपनी उस कविताको काममें न ला सका। लिहाजा अब उसके दूसरे साझीदारको सर्वाधिकार समर्पण करनेमें उसे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

"तुम्हारी भी छतपर दक्षिणी हवा चलेगी, पर नव-वधू क्या चिरकाल नव-वधू ही बनी रहेगी ?"

टेबिलपर जोरका मुक्का जमाता हुआ अमित ऊँचे स्वरमें बोल उठा, "रहेगी, रहेगी, रहेगी !"

योगमाया बगलके कमरेसे दौड़ी आईं, और पूछने लगीं, "क्या रहेगी, अमित ? मेरी टेबिल तो शायद नहीं रहेगी।"

"इस जगतमें जो-भी-कुछ टिकाऊ है, सब रहेगा। संसारमें नव-वधू दुर्लभ है, किन्तु लाखोंमें एक भी यदि दैवसे मिल जाय तो वह चिरकाल नव-वधू ही रहेगी।"

"एक दृष्टान्त तो बताओ, देखूं ?"

"एक दिन समय आयेगा, तब दिखा दूंगा।"

"शायद उसके आनेमें अभी कुछ देर है, तब तक चलो खा लो।"

१२—शेष संध्या

भोजनके बाद अमितने कहा, "कलकत्ता जा रहा हूं, मौसीजी। घर के सब सन्देह करने लगे हैं कि यहाँ रहते-रहते मैं 'खसिया' हो गया हूं।"

"घरवाले जानते हैं क्या कि बात-बातमें तुम्हारा इतना परिवर्तन सम्भव है ?"

"खूब जानते हैं, नहीं तो घरवाले कैसे ! किन्तु जाननेका मतलब, बात-बातमें नहीं, और खसिया होना भी नहीं। जैसा परिवर्तन आज मेरा हुआ है, यह क्या जाति-परिवर्तन है, यह है युग-परिवर्तन ! इसके बीचमें एक कल्पान्त पड़ा हुआ है। प्रजापति जाग उठे हैं मेरे अन्दर, एक नई सृष्टि में। मौसीजी, अनुमति दो, लावण्यको साथ लेकर आज एक बार घूम आऊँ। जानेके पहले शिलांग-पहाड़को आज हम युगल-नमस्कार कर जाना चाहते हैं।"

योगमायाने सम्मति दे दी। कुछ दूर जाते-जाते दोनोंके हाथ मिल

गये। दोनों इतने पास-पास चलने लगे कि देहसे देह छूने लगी। निर्जन सड़कके किनारे नीचेकी ओर घना जंगल है। उस जंगलमें एक जगह जरा-कुछ खुला-हुआ है, आकाशको वहाँ पहाड़की नजरवन्दीसे जरा छुट्टी मिली है, और उसकी अंजलि भरी हुई है सूर्यास्तकी शेष आभासे। वहींपर पश्चिमकी ओर मुंह करके दोनों खड़े हो गये। अमितने लावण्यको अपनी छातीकी ओर खींचते हुए उसका मुंह ऊपरको उठाया। लावण्यकी आँखें आधी मिच गईं, और उनके किनारोंसे आँसू ढलकने लगे। आकाशमें सुनहले रंगपर मानो चुन्नी और पन्नोंकी विगलित किरणोंकी आभा पड़ पड़कर विलीन हो रही हो। बीच-बीचमें पतले बादलोंकी सँधमेंसे सुगभीर निर्मल नील आकाश चमक उठता है। मालूम होता है उसके भीतरसे, जहाँ देह नहीं, केवल आनन्द ही आनन्द है, उस अमर्त्य-जगतकी अव्यक्त ध्वनि आ रही हो। धीरे-धीरे अँधेरा हो आया, और उस खुले आकाशने, रातके फूलकी तरह, अपनी नाना रंगोंकी पंखड़ियोंको बन्द कर लिया।

अमितकी छातीके पाससे लावण्यने मृदु स्वरमें कहा, "चलो अब।"

कैसा-तो उसे लगा कि यहीं शेष करना अच्छा है।

अमित इस बातको समझ गया, कुछ बोला नहीं। लावण्यका मुंह एक बार छातीसे दबाकर वह धीरे-धीरे घरकी ओर चलने लगा।

चलते-चलते बोला, "कल सवेरे ही मुझे शिलांग छोड़ना पड़ेगा, उसके पहले मैं तुमसे मिलने नहीं आऊँगा।"

"क्यों नहीं आओगे?"

"आज ठीक जगहपर हमलोगोंका शिलांग-अध्याय समाप्त हुआ है। इति प्रथमः सर्गः, हमलोगोंका सखी-सखा स्वर्ग।"

लावण्य कुछ न बोली, अमितका हाथ पकड़े चलने लगी। हृदयके भीतर आनन्द है, और उसके साथ-साथ एक क्रन्दन स्तब्ध हुआ बैठा है। उसे ऐसा लगा कि जीवनमें अचिन्तनीय अब कभी भी इतनी निविड़तासे इतने नजदीक नहीं मिलेगा। आज परम-क्षणमें शुभदृष्टि हुई, इसके बाद अब क्या सुहाग-रात है? रह गया केवल मिलन और विदाका एकत्र

मिश्रित एक अन्तिम नमस्कार। बड़ा जी चाहने लगा कि अमितको वह अभी अन्तिम नमस्कार करके कहे कि 'तुमने मुझे धन्य किया।' पर ऐसा न हो सका।

घरके पास पहुँचते ही अमितने कहा, "वन्या, आज तुम अपनी अन्तिम बात एक कवितामें कहो तो उसे मनमें रखके ले जाना मेरे लिए आसान होगा। तुम्हें खुद जो याद हो, ऐसी कोई चीज सुनाओ।"

लावण्यने जरा-सा सोचा, और कहने लगी :--

"नहीं दे सकी मैं तुमको सुख,
मुक्तिका नैवेद्य-पात्र छोड़ चली
रजनीके शुभ्र अवसानमें।
रहा नहीं बाकी कुछ
प्रार्थना न दैन्यराशि
न अभिनय मान-भञ्जनका,
न गर्व-हास्य, न दीन-क्रदन पल-पलका,
न दृष्टि पीछे देखनेकी
कण्टक-संकट-समाधानमें।
है केवल मुक्तिकी डाली रिक्त,
भर दूंगी, दे दूंगी आज उसे
निज मृत्युके महान अवदानमें।"

"वन्या, बहुत बुरा किया तुमने। आजके दिन अपने मुंहसे तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी थी, कदापि नहीं। क्यों तुम्हें आज इसकी याद आई? अपनी यह कविता तुम इसी वक्त वापस ले लो।"

"डर किस बातका, मीता? यह आगमें जला-तपा प्रेम है, यह आनन्द का दावा नहीं करता, यह खुद मुक्त होनेके कारण ही मुक्ति देता है, इसके पीछे क्लान्ति नहीं आती, म्लानता नहीं आती, इससे ज्यादा और-कुछ क्या देनेको है?"

"किन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि यह कविता तुम्हें मिली कहाँसे?"

"रवीन्द्रनाथकी है।"

"उनकी किसी पुस्तकमें तो यह देखी नहीं!"

"किसी पुस्तकमें नहीं निकली।"

"तो फिर कहाँसे मिली?"

"एक लड़का था, जो मेरे पिताको गुरु समझके भक्ति करता था। पिताजीने उसे दी थी ज्ञानकी खुराक, और इस दिशामें उसका हृदय भी था तापस। समय मिलते ही वह जाया करता था रवीन्द्रनाथके पास। कभी-कभी उनकी कापीमेंसे मुष्टि-भिक्षा ले आया करता था वह।"

"और लाकर तुम्हारे चरणोंमें उँड़ेल दिया करता था।"

"इतना साहस उसमें नहीं था। कहीं-न-कहीं रख देता था, इस आशा से कि किसी कदर मेरी निगाह पड़ जाय और मैं उठा लूं।"

"उसपर दया की थी?"

"करनेका मौका ही नहीं आया। मन-ही-मन प्रार्थना करती हूँ, ईश्वर उसपर दया करे।"

"जो कविता तुमने अभी सुनाई, मैं खूब समझ रहा हूँ कि यह उसी अभागेकी मनकी बात है।"

"हाँ, उसकी बात तो है ही।"

"तो तुम्हें आज ही क्यों उसकी बात याद आई?"

"कैसे कहूँ? उस कविताके साथ और एक कविताका टुकड़ा था, वह भी आज क्यों मुझे याद आ रही है, ठीक कह नहीं सकती। —

हे सुन्दर, तुम आंखोंमें भर
लाये हो आँसू केवल।
लाये हो छातीमें धरकर
दुस्सह केवल होमानल।
दुःख-व्यथा है जल-जल उठती,
मुग्ध-प्रणयकी छाती फटती,
उसी तापसे विच्छेद-व्यथा
होकर विकसित होती शत-दल।"

अमितने लावण्यका हाथ मसककर कहा, "वन्या, वह लड़का आज हमारे बीचमें क्यों आ पड़ा? ईर्षा करनेसे मैं घृणा करता हूँ, यह मेरी ईर्षा नहीं, पर कैसा-तो एक तरहका भय आ रहा है मनमें। बताओ, उसकी दी हुई कविताएँ आज ही क्यों तुम्हें इस तरह याद आ रही हैं?"

"एक दिन जब वह हमारे घरसे विदा लेकर चला गया, उसके बाद, जहाँ बैठकर वह लिखा करता था उस डेस्कमें ये दोनों कविताएँ मिली थीं। इसके साथ रवीन्द्रनाथकी और भी बहुत-सी अप्रकाशित कविताएँ थीं, लगभग एक भरी-हुई कापी। आज तुमसे विदा ले रही हूँ, शायद इसीलिए विदाकी कविता याद आ रही है।"

"वह विदा और यह विदा क्या एक ही है?"

"कैसे कहूं? किन्तु इस बहसकी तो कोई जरूरत नहीं। जो कविता मुझे अच्छी लगी है वही तुम्हें सुनाई है, हो सकता है कि इसके सिवा और कोई कारण इसमें न हो।"

"वन्या, रवीन्द्रनाथकी रचनाओंको जब तक लोग बिलकुल भूल नहीं जाते तब तक उनकी अच्छी रचनाएँ वास्तव-रूपमें प्रस्फुटित न हो सकेंगी। इसीलिए, मैं उनकी कविता कभी काममें ही नहीं लाता। किसी दलके लोगोंको 'अच्छा लगना' उस कुहरेकी तरह है जो आकाशपर अपने भींगे हाथ लगा-लगाकर उसके प्रकाशको मैला कर डालता है।"

"देखो, मीता, स्त्रियाँ अपनी अच्छी-लगनेवाली आदरकी वस्तुको अपने अन्तःपुरमें सिर्फ अपनी ही बनाकर छिपा रखती हैं, भीड़के आदमियोंकी कोई खबर ही नहीं रखतीं। वे जितना दाम दे सकती हैं सब दे डालती हैं, अन्य पांच-पचीसके साथ मिलाकर बाजार-भाव जांचनेका उनका मन ही नहीं होता।"

"तो मेरे लिए भी आशा है, वन्या। मैं अपने बाजार-भावकी छोटी सी एक छाप छिपाकर तुम्हारे अपने भावका बड़ा-सा एक मार्का लेकर छाती फुलाये घूमता फिरूंगा।"

"घर आ गया, मीता। अब तुम्हारे मुंहसे तुम्हारे पथान्तकी भी कविता सुन लूं।"

"नाराज न होना, वन्या, मैं रवीन्द्रनाथकी कविता नहीं सुना सकता।"

"नाराज क्यों होने लगी!"

"मैंने एक कविका आविष्कार किया है, उसकी स्टाइलमें –"

"उसकी बात तो तुमसे मैं अकसर ही सुना करती हूँ। कलकत्तेको लिख दिया है मैंने, उसकी एक पुस्तक भेजनेके लिए।"

"तुमने गजब किया! उसकी पुस्तक! उस आदमीमें और चाहे जितने भी दोष हों, पर अपनी पुस्तक वह कभी नहीं छपाता। उसका परिचय तुम्हें मेरेसे ही प्राप्त करना होगा धीरे-धीरे। नहीं तो शायद–"

"डरो मत, मीता, तुमने उसे जिस रूपमें समझा है, मैं भी उसे उसी रूपमें समझ लूंगी, इतना मुझे भरोसा है। मेरी ही जीत रहेगी।"

"क्यों?"

"मेरे अच्छे-लगनेमें मैं जो पाती हूँ वह तो मेरा है ही, और तुम्हारे अच्छे-लगनेमें तुम जो पाते हो वह भी मेरा होगा। मेरी लेनेकी अंजलि होगी हम-दोनोंके मनको मिलाकर। कलकत्तेमें तुम्हारे छोटेसे कमरेकी किताबोंकी आलमारीके एक खानेमें ही दोनों कवियोंकी कविताएँ अँटा सकूंगी मैं। अब तुम अपनी कविता सुनाओ।"

"अब सुनानेको जी नहीं चाहता। बीचमें बहुत ज्यादा बहस हो जानेसे हवा खराब हो गई है, वन्या।"

"कुछ खराब नहीं हुई। हवा ठीक है।"

"अमितने लावण्यके मुंहके सामनेसे लटकते-हुए बालोंको माथेके ऊपर हटाते हुए अत्यन्त दर्दके स्वरमें कहना शुरू किया :—

"सुन्दरी, तुम हो ध्रुवतारा
सुदूर शैल-शिखरान्तमें
शर्वरी जब होगी शेष
उतर आना दिग्भ्रान्तमें।

समझीं, वन्या, चांद बुला रहा है ध्रुवतारा को, अपनी रात बितानेको संगिनी को चाहता है वह। अपनी रातसे उसे अरुचि हो गई है।

धरती जहाँ मिलती है अम्बरके गलेसे
वहाँका हूँ अर्ध-जाग्रत चन्द्र मैं,
कारी अँधियारीकी छातीमें छिपी-हुई
अर्ध-आलोक-रेखाका रन्ध्र मैं।

उसकी इस अध-जगी थोड़ी-सी चाँदनीने अँधेरेको जरा-सा खरोंच-भर दिया है। इसीका उसे खेद है। स्वल्पताके इस जालने जो उसे जकड़ लिया है उसे तोड़ डालनेके लिए मानो वह सारी रात सोते-सोते घुमड़-घुमड़ कर आहें भर रहा हो। कैसी कल्पना है! ग्रैण्ड!

मेरे लिए आसन आज
गहरी नींद सोये-हुए
गगनने बिछाया है।
तन्द्राको कुछ करके कम
हृद्तन्त्रीको सपनेमें
बजा रही काया है।

पर ऐसा हलका होकर जीनेका बोझ जो बहुत ज्यादा है। जिस नदीका पानी सूख गया है उसके सुस्त बहावकी थकानमें जंजाल जमाता रहता है, जो स्वल्प है वह अपनेको ढोनेमें क्लिष्ट हो रहा है। इसीसे वह कहता है:—

सफर मेरा हुआ पूरा
धीमी चाल जाता पार।
थके मेरे सारे अंग
रुक जाता स्वर बार-बार।

पर इस थकानमें ही क्या उसका अन्त है? अपने ढीले तारोंकी वीणाको नये तरीकेसे फिरसे बांधनेकी आशा उसे होने लगी है। दिगन्तके उस पार मानो किसीकी पग-ध्वनि उसे सुनाई देती है—

सुन्दरी ध्रुवतारा तू,
बीते न रात, उसके

पहले ही आना तू,
सपनेकी वही बात
अधूरी रह गई जो
जागकर सुनाना तू।

उद्धारकी आशा है। कलकी भूली-हुई अधूरी बात शायद आज पूरी हो जाय। कानोंमें सुनाई जो दे रहा है जाग्रत विश्वका कलरव, उसको वह महान मार्गकी दूती हाथमें प्रदीप लिये आना ही चाहती है —

भूला पड़ा अपनेको
निशीथके अँधेरेमें,
उठा लेना पकड़ हाथ,
रखना अरुण प्रभातमें,
करना धन्य प्रकाशमें।
तल्लीन है सुप्ति जहाँ
बजता विश्व-मृदंग भी,
सौंपी वहीं वीणा है
अर्ध-जाग्रत चन्द्रने,
गाया गीत इन्द्रने।

वह अभागा चाँद तो मैं ही हूँ, बन्या। कल सवेरे चला जाऊंगा। पर अपने चले-जानेको तो मैं सूना नहीं रखना चाहता। उसके ऊपर आविर्भाव होगा सुन्दरी ध्रुवताराका, जागरणका गीत लेकर आयेगी वह। अन्धकारमय जीवनके स्वप्नमें अब तक जो अस्पष्ट था, सुन्दरी ध्रुवतारा उसे प्रभातमें सम्पूर्ण कर देगी। इसमें एक आशाका जोर है, भावी प्रभातका एक उज्ज्वल गौरव है, तुम्हारे कवि रवीन्द्रनाथकी कविताकी तरह मुरझाया हुआ हताशाका विलाप नहीं।"

"नाराज क्यों होते हो, मीता? मेरे कवि रवीन्द्रनाथ जितना कर सकते हैं उससे ज्यादा वे नहीं कर सकते, बार-बार यह बात कहनेसे लाभ क्या?"

"तुमलोग सव मिलके उसे वहुत ज्यादा —"

"ऐसा न कहो, मीता। मेरा 'अच्छा-लगना' मेरा ही है, उसमें यदि और-किसीके साथ मेरा मेल हो या तुम्हारे साथ मेल न हो, तो इसमें क्या मेरा दोष है? न-हो-तो, वचन देती हूँ, तुम्हारे उस पचहत्तर रुपयेवाले मकानमें, किसी दिन अगर मेरे लिए जगह हो तो, तुम अपने कविकी रचना ही मुझे सुनाना, मैं अपने कविकी रचना तुम्हें नहीं सुनाऊंगी।"

"यह वात तो वेजा हुई। परस्पर एक दूसरेका जुल्म कँधेसे कँधा मिलाकर ढोयेंगे, इसीलिए तो विवाह है।"

"रुचिका जुल्म तुमसे किसी भी तरह सहा न जायगा। रुचिके भोजमें तुमलोग निमंत्रितोंके सिवा किसीको भीतर घुसने नहीं देते, और मैं अतिथि को भी आदरके साथ विठाती हूँ।"

"मैंने अच्छा नहीं किया तर्क उठाकर। हमारा आजका यहाँ शेष-संध्याका सुर विगड़ गया।"

"जरा भी नहीं। जो कुछ कहनेका है सव स्पष्ट कहनेके वाद भी जो सुर टिका रहता है वही हमलोगोंका सुर है। उसमें क्षमाका अन्त नहीं।"

"आज मुझे अपने मुंहका विस्वाद मिटाना ही होगा। पर वंगला काव्यसे न होगा। अंग्रेजी काव्यसे मेरी विचार-वुद्धि वहुत-कुछ शान्त रहती है। योरोपसे लौटनेके वाद शुरू-शुरूमें मैंने भी कुछ दिन प्रोफेसरी की थी।"

लावण्यने हँसके कहा, "हमलोगोंकी विचार-वुद्धि अंग्रेजके घरके वुल डॉगकी तरह है, धोतीकी लाँग लटकती देखता है तो वह भोंकने लगता है। धोती-विभागमें कौन-सा भद्र है, इसका उसे पता ही नहीं। वल्कि खानसामेका तगमा देखता है तो पूंछ हिलाने लगता है।"

"यह तो मानना ही पड़ेगा। पक्षपात स्वाभाविक चीज नहीं, अधिकांश क्षेत्रोंमें वह फरमाइशसे वनाया जाता है। अंग्रेजी साहित्यका पक्षपात वचपनसे ही कनेठी खा-खाकर अभ्यस्त हो गया है। उस अभ्यासके जोरसे ही जैसे एक पक्षको वुरा वतानेका साहस नहीं होता वैसे ही दूसरे पक्षको

अच्छा कहनेके साहसका अभाव बना रहता है। खैर जाने दो, आज निवारण चक्रवर्ती भी नहीं, आज तो बिलकुल खालिस अंग्रेजी कविता चलने दो, बिना अनुवादके।"

"नहीं नहीं, मीता, आज अपनी अंग्रेजी रहने दो। उसे घर जाकर टेबिलपर बैठे पढ़ते रहना। आज हमलोगोंकी इस संध्याकी आखिरी कविता निवारण चक्रवर्तीकी ही होनी चाहिए, और-किसीकी नहीं।"

अमित उत्फुल्ल होकर बोल उठा, "जय निवारण चक्रवर्तीकी जय ! इतने दिन बाद वह अमर हुआ। बन्या, उसे मैं तुम्हारा सभा-कवि बना दूंगा। तुम्हारे सिवा और-किसीके द्वारका प्रसाद वह न लेगा।"

"उससे क्या वह हमेशा सन्तुष्ट रहेगा ?"

"नहीं रहेगा तो उसे कान पकड़के विदा कर दिया जायगा।"

"अच्छा, कान पकड़नेकी बात पीछे तय की जायगी, पहले कानमें पड़ने दो।"

अमित कहने लगा :—

"कितना धर धीरज तुम
ठहरीं दिन-रात पास।
अपने पद-चिह्नोंको
छोड़ गई बार-बार
मेरे भाग्य-पथकी धूलमें,
मानो पराग-फूलमें।
आज जब
जाना है दूर तब
कर जाऊँगा तुम्हें दान
तुम्हारा ही विजय-गान।
मेरे इस जीवनमें
बार-बार व्यर्थ हुए
बहुतेरे आयोजन,

होमानल नहीं जला,
शून्यमें विलीन हुईं
आशाएँ धूआँ बन,
सूना कर मेरा मन।
वार-वार आँका है
क्षणिककी उस शिखाने
क्षीण टीका निश्चेतन
निशीथिनीके भालमें।
निश्चिह्न हो गया सब चिह्न-हीन कालमें।

तुम्हारा अब आगमन
होगा, होम-हुताशन
गौरवसे जलेगा।
यज्ञ मेरा पलेगा।
आहूति दिन-शेषमें
अपनी दी तुम्हारे हेत।
लो अब प्रणाम मेरा
जीवनका परिणाम शेष।
देना स्पर्श स्नेहका
मेरी इस प्रणतिको।
ऐश्वर्यमें तुम्हारे है
सिंहासन विछा जहाँ,
करना आह्वान मेरा,
मिल जाय अवश्य वहाँ
स्थान मेरी प्रणतिको।"

१३— आशंका

आज, सवेरे ही से काममें मन लगाना लावण्यके लिए कठिन हो गया है। वह घूमने भी नहीं गई। अमितने कहा था, शिलांगसे जानेके पहले आज सवेरे वह उनलोगोंसे मिलना नहीं चाहता। उस प्रतिज्ञाकी रक्षाका भार दोनोंपर है। क्योंकि, जिस रास्तेसे वह घूमने जाती है उसी रास्तेसे अमितको जाना है। इससे मनमें उसके लोभ भी काफी था। उसे कसके दबाना पड़ा। योगमाया तड़के ही स्नान करके अपनी पूजा-आह्निकके लिए कुछ फूल चुनती हैं। उनके निकलनेके पहले ही लावण्य उस जगहसे चली आई युकैलिप्टस-पेड़के नीचे। हाथमें दो-एक किताब थीं, शायद अपनेको और दूसरोंको भुलावा देनेके लिए। एक किताबके पन्ने खुले थे, पर दिन चढ़ रहा है, पन्ने उलटे नहीं जा रहे। मनमें बार-बार वह यही कह रही है कि 'जीवनके महोत्सवका दिन कल समाप्त हो गया।' आज सवेरेसे मेघ और धूपमेंसे भग्नताका दूत बीच-बीचमें आकाशमें बुहारी सी दे रहा है। लावण्यके मनमें दृढ़ विश्वास है कि अमित चिर-पलायित है, एक बार वह खिसक गया तो फिर उसका पता नहीं लग सकता। राह चलते-चलते न-जाने कब वह कहानी शुरू करता है, उसके बाद रात आती है, और दूसरे दिन सवेरे देखा जाता है कि कहानीका सूत्र टूट गया है, पथिक चला गया है। इसीसे, लावण्य सोच रही थी कि उसकी कहानी अबसे चिरदिनके लिए बाकी रह गई। आज उस असमाप्तिकी म्लानता है सवेरे के उजालेमें, और अकाल-अवसानका अवसाद है आर्द्र हवामें।

इतनेमें, करीब नौ बजे होंगे, धमाधम आवाज करता हुआ अमित आ पहुँचा, और लगा पुकारने, "मौसीजी, मौसीजी!" योगमाया संध्या-पूजासे निवृत्त होकर भण्डारके काममें लगी हुई थीं। आज उनका भी मन पीड़ित था। अमितने अपनी बातोंसे, हँसीसे और चांचल्यसे इतने दिनों तक उनके स्नेहासक्त मनको, उनके घरको, भर रखा था। 'अमित चला गया' इस व्यथाके बोझसे उनका आजका सवेरा मानो वृष्टि-बिन्दुके भारसे

तुरत-गिरे-हुए फूलकी तरह मुरझा गया है। अपने विच्छेद-पीड़ित घर-गृहस्थीके काममें आज उन्होंने लावण्यको नहीं बुलाया, समझ गईं कि आज उसे अकेली रहनेकी जरूरत है, लोगोंकी दृष्टिके ओझल।

लावण्य झटपट उठके खड़ी हो गई। गोदमेंसे किताब गिर गई नीचे, इसका कुछ होश ही नहीं उसे। इधर योगमाया फुरतीसे भण्डार-घरसे निकल आईं, और बोलीं, "क्या है, बेटा अमित, भूकम्प हो रहा है क्या ?"

"भूकम्प तो है ही। चीज-वस्तु सब रवाना कर दी हैं। गाड़ी तैयार है। डाकखाना गया था, यह देखने कि कोई चिट्ठी-पत्री तो नहीं आई। वहाँ एक टेलिग्राम मिला।"

अमितके चेहरेका भाव देखकर योगमाया उद्विग्न हो उठीं। पूछा, "खबर तो सब अच्छी है न ?"

लावण्य भी आ पहुँची। अमितने व्याकुल चेहरेसे कहा, "आज ही शामको आ रहे हैं सब,— मेरी बहन सिसी, उसकी सखी केटी मित्र, और उसके भाई नरेन।"

"सो इसमें चिन्ताकी क्या बात है, बेटा ! सुना है घुड़दौड़के मैदानके पास एक मकान खाली है। अगर कहीं भी कोई इन्तजाम न हुआ तो हमारे यहाँ क्या किसी कदर जगह न होगी ?"

"इसके लिए चिन्ता नहीं, मौसी। उनलोगोंने खुद ही टेलिग्राम करके होटलमें जगह ठीक कर ली है।"

"और चाहे जो हो, बेटा, तुम्हारी बहन वगैरह आकर देखेंगी कि तुम उस मनहूस झोंपड़ेमें हो, यह हर्गिज न होगा। वे अपने आदमीकी सनक के लिए हम ही लोगोंको जिम्मेदार ठहरायेंगी।"

"नहीं मौसीजी, मेरा पैराडाइज लॉस्ट है। उस नग्न असबाबके स्वर्गसे मेरी विदा हो चुकी है। उस रस्सीकी खाटके घोंसलेसे मेरे सारे सुख-स्वप्न उड़ भागेंगे। मुझे भी जगह लेनी पड़ेगी उस अति-परिष्कृत होटलके एक अति-सभ्य कमरेमें।"

बात ऐसी कुछ खास नहीं थी, फिर भी लावण्यका चेहरा फक़ पड़

गया। इतने दिनोंसे यह बात कभी उसके ध्यानमें ही न आई थी कि अमित का जो समाज है वह उनलोगोंके समाजसे हजारों योजन दूर है। एक ही क्षणमें इसे वह समझ गई। अमित जो आज कलकत्ता जा रहा था उसमें विच्छेदकी कठोर मूर्ति नहीं थी। किन्तु आज यह जो उसे होटल जानेके लिए मजबूर होना पड़ रहा है, इसीसे लावण्य समझ गई कि जिस घरको इतने दिनोंसे वे दोनों नाना अदृश्य उपकरणोंसे गढ़ते आ रहे थे वह घर शायद अब किसी भी दिन दिखाई न देगा।

लावण्यकी ओर एक नजर देखकर अमितने योगमायासे कहा, "मैं होटलमें जाऊँ चाहे जहन्नुममें, पर असल घर मेरा यहीं रहा।"

अमित समझ गया कि शहरसे एक अशुभ-दृष्टि आ रही है। मन ही मन उसने तरह-तरहके प्लैन बना लिये हैं ताकि सिसीका दल यहाँ न आ सके। किन्तु इधर कुछ दिनोंसे उसकी चिट्ठी-पत्री आ रही हैं योगमाया के घरके ठिकानेसे, तब उसने नहीं सोचा था कि इससे कभी उसपर विपत्ति आ सकती है। अमितके मनके भाव दबे नहीं रहना चाहते, यहाँ तक कि कुछ आधिक्यके साथ ही प्रकट होते हैं। बहनके आगमनके सम्बन्धमें उसका इतना ज्यादा उद्वेग योगमायाको कुछ असंगत-सा लगा। लावण्य भी समझ गई कि अमित उसके साथ ऐसे सम्बन्धके लिए अपनी बहन आदिके सामने शर्म महसूस कर रहा है। गरज यह कि मामला लावण्यके लिए विस्वाद और असम्मानजनक हो उठा।

अमितने लावण्यसे पूछा, "तुम्हें फुरसत है क्या, घूमने चलोगी?"

लावण्यने जरा-कुछ कठोरताके साथ ही जवाब दिया, "नहीं, मुझे फुरसत नहीं।"

योगमाया जरा-कुछ व्यस्त होकर बोल उठीं, "जाओ न, बिटिया, घूम आओ।"

लावण्यने कहा, "मा, कुछ दिनोंसे सुरमाको पढ़ानेमें मेरी तरफसे बड़ी लापरवाही हो रही है। बहुत कसूर हो गया है मुझसे। कल रात ही को तय किया था मैंने, कि आजसे अब किसी भी तरह ढिलाई न करूँगी।"

इतना कहकर वह ओठ दवाकर चेहरा कठोर करके वैठी रही।

लावण्यके इस जिद्दी मिजाजसे योगमाया परिचित थीं। दवाव डालने या अनुरोध करनेकी हिम्मत नहीं हुई उन्हें।

अमितने नीरस कण्ठसे कहा, "मैं भी चल दिया कर्तव्य करने, उनलोगों के लिए सव ठीक-ठाक करके रखना है।"

इतना कहकर, चले जानेके पहले, वह वरामदेमें एक वार स्तब्ध होकर खड़ा हो गया। वोला, "वन्या, वह देखो। पेड़की ओटमेंसे मेरी झोंपड़ीका छप्पर जरा-जरा दीख रहा है। एक वात तुमलोगोंसे कही नहीं गई है, वह मकान मैंने खरीद लिया है। मकानका मालिक तो पहले मेरी वात सुनके दंग रह गया। उसने जरूर सोचा होगा कि वहाँ मुझे सोनेकी गुप्त खानका पता लग गया है। कीमत उसने खूव कसके वसूल की है। वहाँ सोनेकी खानका पता तो लग ही गया था, उसकी खवर सिर्फ मुझ ही को थी। मेरी जीर्ण कुटीरका ऐश्वर्य और-सवोंकी निगाहसे छिपा रहेगा।"

लावण्यके चेहरेपर एक गभीर विपादकी छाया आ पड़ी। उसने कहा, "और-सवोंकी वात तुम इतनी वढ़ा-चढ़ाकर क्यों सोचते हो? और सव जान ही जायेंगे तो क्या होगा। ठीक-ठीक जान जाना तो ठीक ही है, फ़िर असम्मान करनेका किसीको साहस ही न होगा।"

इस वातका कुछ उत्तर न देकर अमितने कहा, "वन्या, मैंने तय कर लिया है कि व्याहके वाद हमलोग इसी झोंपड़ेमें आकर रहेंगे कुछ दिन। मेरा वह गंगा-किनारेका वगीचा, वह घाट, वह वटवृक्ष, सव-कुछ समा गया है उस झोंपड़ेमें। तुम्हारा दिया हुआ 'मीता' नाम इसीको फवता है।"

"उस घरसे आज तुम निकल आये हो, मीता। फिर किसी दिन उसमें घुसना चाहोगे तो देखोगे, उसमें तुम अमा नहीं रहे हो। संसारमें 'आजके दिनके घर'में 'कलके दिन'को जगह नहीं रहती। उस दिन तुमने कहा था, 'जीवनमें मनुष्यकी पहली साधना गरीवीकी होती है, दूसरी साधना ऐश्वर्यकी है।' उसके वाद, अन्तिम साधनाकी वात तुमने नहीं वताई, वह है त्यागकी साधना।"

"वन्या, यह तुम्हारे रवि ठाकुरकी बात है। उसने लिखा है, 'शाहजहां आज अपने ताजमहलसे भी आगे बढ़ गया।' एक छोटी-सी बात तुम्हारे कविके दिमागमें नहीं आई कि हमलोग जो कुछ बनाया करते हैं वह इसी लिए कि हम उस बनी-हुई चीजसे आगे बढ़ जायें। विश्व-सृष्टिमें इसीको कहते हैं 'एवोल्यूशन', क्रम-विकाश। एक अद्भुत भूत सरपर सवार रहता है और कहता है, 'सृष्टि करो'। सृष्टि करते ही भूत उतर जाता है, तब फिर उस सृष्टिकी भी जरूरत नहीं रहती। किन्तु इसके मानी यह नहीं कि उस सृष्टिको छोड़ जाना ही चरम बात हो। दुनियामें शाहजहां-मुमताजकी अक्षय धारा बराबर बहती ही आ रही है, वे क्या अकेले ही हैं? इसीलिए तो 'ताजमहल' किसी भी दिन शून्य नहीं हुआ, हो नहीं सकता। निवारण चक्रवर्तीने सुहाग-रातपर एक कविता लिखी है, वह तुम्हारे कविवर की 'ताजमहल' कविताका संक्षिप्त उत्तर है, पोस्टकार्डपर लिखा-हुआ—

तुम्हें छोड़ जाना है
सवेरेकी होनमें
सुनके रथचक्र-शब्द
हो उठेगी रात जब
उदासी अनमनी-सी।
हाय रे सुहाग-रात,
बाहर है तू विराट
बिछोहकी रकंत-सी।
टूटती या फूटती है जितनी हो
फिर भी तू
करती बरबाद तोड़
वरमाल्य उतनी ही।
तू है क्षयहीन सदा
तेरा यह उत्सव-दिन
अक्षय है प्रतिक्षण

विघटे न विछिन्न हो
कभी, नीरव भी हो नहीं।
कौन कहता है तुम्हें
छोड़ चला गया युगल
सूना कर शय्या-तल ?
नहीं गया, नहीं गया,
नये-नये यात्रीगण
घूम-घूम आते वे
जहाँ हैं आते वहीं
तुम्हारे ही आह्वानपर
तुम्हारे उदार द्वारपर।
अरी ओ सुहाग-रात,
प्रेम ही इस विश्वमें
मृत्यु-हीन है अजर,
और तुम भी तो हो अमर।

तुम्हारा कवि सिर्फ चले जानेकी वात ही कहता है, वन्या, रह जानेका गीत गाना नहीं जानता। वन्या, कवि क्या कहता है कि हम भी दोनों उस दिन उस सुहाग-रातका दरवाजा खटखटायेंगे, और दरवाजा नहीं खुलेगा ?"

"मेरी विनती रखो, मीता, आज सवेरे कविकी लड़ाई न छेड़ो तुम। तुम क्या समझते हो, पहले ही दिनसे मैं नहीं समझी हूं कि तुम्हीं निवारण चक्रवर्ती हो ? परन्तु तुम अपनी इन कविताओंमें अभीसे हमारे प्रेमकी समाधि वनाना शुरू मत करो, कमसे कम उसके मरने तक प्रतीक्षा करो।"

अमित आज वहुत-सी फालतू वातें कहकर अपने भीतरके किसी उद्वेगको दवाना चाहता है, लावण्य इस वातको समझ गई है।

अमित भी समझ गया कि काव्यका द्वन्द्व कल शामको वेमेल नहीं हुआ, किन्तु आज सवेरेसे उसका सुर विगड़ा जा रहा है। किन्तु यह वात लावण्य के लिए स्पष्ट हो रही है, यह उसे अच्छा नहीं लगा। वह जरा-कुछ नीरस

भावसे बोला, "तो मैं जाऊँ, विश्व-जगतमें मेरे लिए भी काम है, फिलहाल वह है होटल देखना। उधर शायद अभागे निवारण चक्रवर्तीकी छुट्टीकी मियाद भी खतम हुई जा रही है।"

लावण्यने अमितका हाथ पकड़कर कहा, "देखो, मीता, अपने मनको ऐसा बनाये रखना जिससे हमेशा मुझे क्षमा कर सको। अगर किसी दिन चले जानेका समय आये, तो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, नाराज होकर न चले जाना।" इतना कहकर वह आँसू छिपानेके लिए जल्दीसे दूसरे कमरेमें चली गई।

अमित कुछ देर तक स्तब्ध खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे अन्यमनस्क-सा होकर चला गया युकैलिपटसके नीचे। देखा कि वहाँ कुछ अखरोटके छिलके बिखरे हुए पड़े हैं। देखते ही उसके मनमें कैसी-सी एक तरहकी व्यथा-सी चुभने लगी। जीवनकी धारा चलते-चलते अपने जो चिह्न बिछा जाती है उनकी तुच्छता ही सबसे ज्यादा सकरुण होती है। उसके बाद देखा कि घासपर एक किताब पड़ी हुई है, रवीन्द्रनाथकी 'बलाका'। उसके नीचेके पन्ने भीग गये हैं। एक बार उसने सोचा कि उसे वह दे आये जाकर, पर देने नहीं गया, जेबमें रख ली। होटल जानेको उद्यत हुआ, किन्तु गया नहीं, बैठ गया पेड़के नीचे। रातके गीले बादलोंने आकाशको खूब कसके माँज दिया है। धूल-धुली हवामें चारों तरफका चित्र अत्यन्त स्पष्ट दिखाई दे रहा है, पहाड़ और पेड़-पौधोंके सीमान्त मानो घने नील आकाशमें खुदे हुए हों, जगत मानो पास आकर उसके मनके बिल्कुल ऊपर आ लगा हो। धीरे-धीरे दिन चला जा रहा है, उसके भीतर है भैरवीका सुर।

लावण्यकी प्रतिज्ञा थी कि अबसे वह खूब डटके काम करने लग जायगी, फिर भी, उसने जब दूरसे देखा कि अमित पेड़के नीचे बैठा है तो उससे रहा न गया, भीतरसे उसका हृदय काँप उठा, आँखोंमें आँसू भर आये। पास आकर बोली, "मीता, क्या सोच रहे हो तुम?"

"इतने दिनोंसे जो सोच रहा था उससे बिल्कुल उल्टा।"

"वीच-वीचमें मनको विलकुल उलटके विना देखे तुम चंगे नहीं रहते। अच्छा तो, तुम्हारी उलटी चिन्ता कैसी है, सुनूं तो सही।"

"तुम्हें अपने मनमें लिये-लिये मैं वरावर घर ही वना रहा था, कभी गंगाके किनारे तो कभी पहाड़के ऊपर। आज मनमें और एक चित्र जाग रहा है, सवेरेके उजालेमें उदास करनेवाले एक रास्तेका चित्र, जो वनकी छाया-ही-छायामें सामनेकी उन पहाड़ियोंके ऊपरसे चलता चला गया है। हाथमें एक लम्वा भाला है, और पीठपर है एक चमड़ेके स्ट्रैपसे वँधा-हुआ चौखूंटा थैला। तुम चलोगी साथ। तुम्हारा नाम सार्थक हो, वन्या, मुझे मालूम होता है तुम मुझे वन्द घरसे निकालकर प्रवाहके पथपर वहाये लिये जा रही हो। घरमें आदमी वहुत होते हैं, और रास्ता होगा केवल हम दो जनोंका।"

"डायमण्डहारवरका वगीचा तो चला ही गया, उसके वाद वह पचहत्तर रुपये-वाला घर भी वेचारा जाता रहा। खैर जाने दो। पर चलनेके रास्तेमें विच्छेदकी व्यवस्था कैसी करोगे? दिन छुपने लगेगा तो तुम एक पान्थशालामें घुसोगे और मैं किसी दूसरीमें?"

"इसकी जरूरत ही नहीं होगी, वन्या। 'चलना' खुद ही सवको नया वनाये रखता है, कदम-कदमपर नया, पुराना होनेका समय ही नहीं मिलता। असलमें वैठा रहना ही वुढ़ापा है।"

"अकस्मात् ऐसा विचार तुम्हारे मनमें क्यों आया, मीता?"

"तो सुनो, वताता हूं। अचानक शोभनलालकी एक चिट्ठी मिली मुझे। उसका नाम सुना होगा शायद, 'रायचन्द-प्रेमचन्द स्कॉलर'-वाला है वह। कुछ दिन हुए, वह भारतीय इतिहासके प्राचीन मार्गोंकी खोज करनेके लिए निकल पड़ा है। अतीतके लुप्त मार्गका उद्धार करना चाहता है वेचारा। और मेरी इच्छा है कि मैं भविष्यका मार्ग तैयार करूं।"

लावण्यकी छातीके भीतर सहसा एक जोरका धक्का लगा। उसकी वातको वीच ही में रोककर लावण्यने कहा, "शोभनलालके साथ एक ही साल मैंने एम०ए०की परीक्षा दी थी। उसकी आगेकी खवर सुननेको जी चाहता है।"

"एक बार तो उसे सनक सवार हुई कि अफगानिस्तानके प्राचीन शहर कपिशके भीतरसे किसी दिन जो पुराना रास्ता गया था उसकी वह खोज करेगा। उसी रास्तेसे ह्वेन सांगने तीर्थयात्रा की थी, और उससे भी पहले अलेकजेण्डरने जो रणयात्रा की थी वह भी उसी रास्तेसे। शोभनलालने खूब कसके पश्तो पढ़ी और पठानी कायदे-कानूनोंका अभ्यास किया। सुन्दर चेहरेपर ढीले कपड़े पहन लेनेसे ठीक पठान जैसा नहीं दिखाई देता, दिखाई देता है फ्रान्सीसी-सा। एक दिन उसने मुझे आकर पकड़ा, फ्रान्समें जो फ्रान्सीसी विद्वान् इस काममें लगे हुए हैं उनके नाम परिचय-पत्र लिख देनेके लिए। फ्रान्समें रहते वक्त किसी-किसीके पास मैंने पढ़ा था। पत्र तो लिख दिया मैंने, पर भारत-सरकारसे उसे छूट-पत्री नहीं मिली। उसके बादसे वह दुर्गम हिमालयपर बराबर मार्ग ढूंढ़ता फिर रहा है, कभी काश्मीर जाता है तो कभी कुमायूं। अबकी बार उसकी तबीयत चली है हिमालयके पूर्व-प्रान्तको भी वह छान डालेगा। बौद्ध-धर्म प्रचारका रास्ता इधरसे कहाँ गया है, उसे वह देखना चाहता है। उस राह-सनकीकी बात याद आते ही मेरा मन उदास हो जाता है। पोथियोंके अन्दर हम सिर्फ बातोंका रास्ता ढूंढ़-ढूंढ़कर आँखें खो बैठते हैं, और वह पागल निकला है राहकी पोथी पढ़ने, मानव-विधाताके अपने हाथकी लिखी-हुई! मुझे कैसा लगता है जानती हो?"

"क्या, बताओ?"

"ऐसा लगता है कि प्रथम यौवनमें किसी दिन शोभनलालने किसी कंकण-पहने हाथका धक्का खाया है, इसीसे वह घरसे छिटक पड़ा है। उसकी कहानी मुझे मालूम नहीं, पर हाँ, एक दिनकी बात है, मेरे साथ अकेला ही था वह, बातों-ही-बातोंमें रातके बारह बज गये, जंगलके बाहर सहसा चाँद दिखाई दिया एक फूल-खिले मौलसिरीके पेड़की ओटमेंसे। ठीक उसी समय किसीकी बात करनी चाही उसने, नाम नहीं बताया, न कुछ ब्योरा ही बताया। जरा-कुछ आभास देते-देते ही गला भारी हो आया उसका, और झटसे उठके चल दिया। मैं समझ गया कि उसके जीवनमें कहीं-न-कहीं एक बहुत ही निष्ठुर बात चुभी हुई है। और शायद उस बातको ही वह राह चलते-चलते पाँवोंसे घिस-घिसके मिटा देना चाहता है।"

लावण्यका ध्यान सहसा उद्भिदतत्त्वकी ओर चला गया, और झुककर वह देखने लगी घासमें सफेद-पीले रंगके एक वनफूलकी तरफ। अत्यन्त मनोयोगके साथ उसे उसकी पँखड़ियाँ गिननेकी आवश्यकता मालूम हुई।

अमितने कहा, "समझीं, वन्या, मुझे तुमने आज रास्तेकी तरफ ढकेल दिया है।"

"कैसे ?"

"मैंने घर वनाया था। आज सवेरे तुम्हारी वातोंसे मालूम हुआ कि तुम उसके भीतर पाँव धरनेमें सकुचाती हो। आज दो महीनेसे मैंने मन-ही-मन घर सजाया। और, तुम्हें वुलाकर कहा, 'आओ प्रिये, घरमें आओ', और तुमने आज प्रियाका साज-शृंगार उतार दिया। वोलीं, 'यहाँ जगह न होगी, वन्धु, हमारा सप्तपदी-गमन चिरकाल चलता रहेगा'।"

वनफूलकी उद्भिद-विद्या आगे नहीं वढ़ी। लावण्य सहसा उठ खड़ी हुई, और क्लिष्ट स्वरमें वोली, "मीता, अव रहने दो, समय नहीं रहा।"

१४– धूमकेतु

इतने दिनों वाद अमितको पता चला कि लावण्यके साथ उसके सम्बन्ध को शिलांगके सव वंगाली जान गये हैं। सरकारी आफिसके क्लर्कोंका मुख्य आलोच्य विषय होता है उनके जीविका-भाग्य-गगनमें कौनसा ग्रह राजा हुआ और कौनसा मंत्रीवर। इतनेमें उनकी नजरोंमें पड़ गया मानव जीवनके ज्योतिर्मण्डलमें एक युग्म-ताराका आवर्तन, एकदम 'फास्ट मैग्नि-च्युड'का प्रकाश। पर्यवेक्षकोंमें उनकी प्रकृतिके अनुसार इन दोनों चमकते हुए ज्योतिष्कोंके आग्नेय-नाटचकी नानाप्रकारकी व्याख्याएँ चल रही हैं।

पहाड़पर हवा खाने आया था श्रीकुमार मुखर्जी, अटर्नी, और वह भी इस व्याख्यामें आ पड़ा। संक्षेपमें कोई उसे कहता 'कुमार मुख' और कोई कहता 'मार मुख'। सिसी-लिसीकी मित्र-गोष्ठीका अन्तश्चर नहीं था वह, किन्तु उनकी ज्ञाति यानी जान-पहचानकी गोष्ठीमें जरूर था। अमितने उसका नाम रखा था 'धूमकेतु'। इसका एक कारण यह था कि वह इनके गुटके वाहरका है, फिर भी वीच-वीचमें इनके कक्षमार्गमें पूंछ छुआ जाता

है। सभीका अनुमान है कि जो ग्रह उसे खास तौरसे खींच रहा है उसका नाम है 'लिसी'। इस विषयको लेकर सभी-कोई हँसी-मजाक किया करते हैं, पर खुद लिसी इससे नाराज होती और शरमाती है। और इसीलिए लिसी अकसर उसकी जोरसे पूंछ मरोड़कर चली जाती है। फल-स्वरूप देखा यह जाता है कि धूमकेतुकी पूंछ या मूंछका कुछ भी नहीं बिगड़ता।

अमितने शिलांगके राह-बाजारमें 'कुमार मुख'को दूरसे दो-एक बार देखा है। हालाँ कि उसे देख पाना जरा मुश्किल ही है। आज तक वह विलायत नहीं गया, और यही वजह है कि उसके चाल-चलनमें विलायती अदब-कायदे अत्यन्त उत्कटरूपसे प्रकट होते हैं। उसके मुंहमें हरवक्त एक मोटा चुरुट सुलगता रहता है, और यही उसके 'धूमकेतु-मुख' नामका प्रधान कारण है। अमित उससे दूरसे ही बचते रहनेकी कोशिश करता रहता है, और बराबर अपनेको भुलावा भी देता रहता है कि धूमकेतु इस बातको शायद नहीं जानता। परन्तु 'देखकर भी न देखना' एक बड़ी विद्या है, चोरी-विद्याकी तरह उसकी सार्थकता है पकड़े न जानेमें। उसमें प्रत्यक्ष दृश्यको सम्पूर्ण पार करके देखनेकी पारदर्शिता होनी चाहिए।

कुमार मुखने शिलांगके बंगाली-समाजसे ऐसी बहुत-सी बातें संग्रह की हैं जिनका मोटे अक्षरोंमें शीर्षक दिया जा सकता है, 'अमित रायका अमितावार'। मुंहसे जिन लोगोंने सबसे ज्यादा निन्दा की है, मनसे वे ही अब सबसे अधिक रस लिया करते हैं। यकृतकी विकृति सुधारनेके लिए कुमार का कुछ दिन यहाँ रहना तय था, किन्तु जनश्रुति-विस्तारके उग्र उत्साहने उसे पाँच ही दिनमें कलकत्ता वापस भेज दिया। वहाँ जाकर सिसी-लिसीकी सोसाइटीमें उसने अपनी चुरुट-धूमावृत अत्युक्तियोंके उद्गारसे अमितके सम्बन्धमें कौतुक-कुतूहलोंसे विजड़ित एक विभीषिका-सी खड़ी कर दी।

अभिज्ञ पाठक मात्र अब इस बातका अनुमान लगा चुके होंगे कि सिसी देवताका वाहन है केटी मीटरका बड़ा भाई नरेन। अब चर्चा उठी है कि उसको बहुत दिनोंसे चली-आई-हुई वाहन-दशा अब वैवाहनकी दशम दशामें उत्तीर्ण होगी। सिसी अब मन-ही-मन राजी है। परन्तु ऊपरसे ऐसा भाव दिखाकर कि राजी नहीं है, उसने एक प्रकारका प्रदोष-अन्धकार खड़ा कर रखा है। नरेनने सोच रखा था कि अमितकी सम्मतिकी सहायता

से वह इस संशय-दशाको पार कर जायगा, पर अमित अहमक न तो कलकत्ते ही लौट रहा है और न चिट्ठीका जवाब ही दे रहा है। अंग्रेजीके जितने भी गर्हित शब्दभेदी वाक्य उसे मालूम थे उन-सबको वह प्रकट और स्वगत उक्तियोंमें लापता अमितकी ओर फेंक चुका। यहाँ तक कि तारसे अत्यन्त बेतार वाक्य भी शिलांग भेजनेसे वह बाज नहीं आया, किन्तु उदासीन नक्षत्रको लक्ष्य करके छोड़ी-हुई उद्धत हवाई-आतिशबाजीकी तरह कहीं भी उसकी दाह-रेखा नहीं पड़ी। अन्तमें सर्वसम्मतिसे तय हुआ कि असल हालतकी सरे-जमीन तहकीकात होना जरूरी है। सर्वनाशके स्रोतमें अमितकी चोटीका छोर भी अगर कहीं थोड़ा-बहुत दिखाई दे, तो उसे खींचकर शीघ्र किनारे लगाना आवश्यक है। इस विषयमें उसकी अपनी बहन सिसीकी अपेक्षा पराई बहन केटीका उत्साह कहीं ज्यादा है। हमारे यहाँ राजनीतिमें जैसा अफसोस प्रचलित है कि 'भारतका धन विदेश चला जा रहा है', केटी मीटरका भाव लगभग उसी जातिका है।

नरेन मीटर एक लम्बे अरसे तक योरोपमें था। जमींदारका लड़का ठहरा, आमदनीकी कोई चिन्ता नहीं, खर्चके लिए भी वही बात थी, और विद्यार्जनकी चिन्ता भी उसी मात्रामें हलकी थी। विदेशमें खर्चकी तरफ ही उसने ज्यादा ध्यान दिया था, अर्थ और समय दोनों ही दिशामें। अपने को कलाकारके रूपमें परिचित करा सकनेपर वहाँ एकसाथ दायित्वमुक्त स्वाधीनता और अहैतुक-आत्मसम्मान प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए वह कला-सरस्वतीके अनुसरणमें, योरोपके बहुतसे बड़े-बड़े शहरोंके बोही-मियन[1] मुहल्लोंमें रहा है। कुछ दिन तक कोशिश करनेके बाद स्पष्टवक्ता हितैषियोंके कठोर अनुरोधसे उसे चित्र बनाना छोड़ देना पड़ा, और अब वह चित्रकलाकी समझदारीमें अपनी परिपक्वता जाहिर करनेके लिए अपनी निरपेक्ष-प्रामाणिकताका परिचय दिया करता है। चित्र-कलाको वह फला-फुला नहीं सकता, पर दोनों हाथोंसे उसे मसल जरूर सकता है। फरासीसी ढाँचेमें उसने अपनी मूंछोंके दोनों किनारे बड़े जतनसे कंटकित कर लिये हैं, और साथ ही सिरके घने-लम्बे बालोंके प्रति अति-सयत्न

---

१ सामाजिक-बन्धन-विद्रोही शिल्प-कला-साहित्य-सेवियोंके मुहल्ले।

अवहेलना भी करता है। चेहरा उसका अच्छा ही है, पर उसे और भी अच्छा बनानेकी बहुमूल्य साधनामें उसकी आईनेदार टेबिल पैरिसके विलास-वैचित्र्यसे भाराक्रान्त बनी रहती है। उसकी मुंह-हाथ धोनेकी टेबिलके उपकरण दशाननके लिए भी अधिक प्रमाणित हो सकते थे। कीमती 'हैवाना' सिगार सुलगाना और दो-चार कश खींचकर उसे बड़े आसान तरीकेसे अवज्ञाके साथ ऐस्ट्रेमें जलता छोड़ देना, और हर महीने पहननेके कपड़े फरासीसी धोबीके यहाँसे धुलवाकर पोस्ट-पार्सलसे मंगाना इत्यादि विशिष्टताओंको देखते हुए उसके आभिजात्यके विषयमें सन्देह करनेका साहस नहीं होता। योरोपकी श्रेष्ठ दरजी-शालाके रजिस्टरमें उसकी देहका नाप और नम्बर लिखे हुए हैं, वह भी ऐसी जगह जहाँ पटियाला और कपूरथलाके राजाओंके नाम भी मिल सकते हैं। उसकी बाजारू अंग्रेजी-भाषाका उच्चारण विजड़ित और विलम्बित होता है, और उसमें अधखुली आँखोंके अलस कटाक्षका सहयोग अनतिव्यक्त-सा रहता है। जो लोग इस विषयमें जानकार या अनुभवी हैं उनके मुंह सुना गया है कि इंगलैण्डके बहुतसे नीले खूनके अमीरोंके कंठस्वरमें इस तरहकी गद्गद जड़ताका भाव पाया जाता है। इसके सिवा घुड़दौड़ी अपभाषा और विलायती शपथोंके दुर्वाक्य-सम्पदमें वह अपने दलके लोगोंमें आदर्श पुरुष है।

केटी मीटरका असल नाम केतकी मित्र है। और, चाल-चलन यानी रहन-सहन उसका बड़े भाईके ही कायदे-कारखानेमें भवकेकी परम्परासे शोधित तीसरी बार चुवाये-हुए विलायती कौलीन्यके तेज एसेन्सके समान है। साधारण भारतीय कन्याके दीर्घकेश-गौरवके गर्वके प्रति गर्व करके ही मानो उसने अपने बालोंपर कैंची चलवा दी है, जिससे उसके जूड़ेने मेढ़की या मेढ़कीके बच्चेकी पूंछकी तरह विलुप्त होकर अनुकरणमें फुदकनेकी परिणत अवस्था प्राप्त कर ली है। उसके चेहरेकी स्वाभाविक गौरिमा (गोरापन) रंगके प्रलेपसे कलई की-हुई है। जीवनकी आद्यलीलामें केटीकी काली आँखोंका भाव था स्निग्ध, अब मालूम होता है कि वह हरएकको देख ही नहीं पाती। और अगर देख भी लेती है तो उसपर उसका ध्यान ही नहीं जाता, और कदाचित् ध्यान जाता भी है तो उस दृष्टिमें मानो अधखुली छुरीकी-सी झलक रहती है। प्रारम्भिक उमरमें उसके ओठोंपर

सरल माधुर्य था, और अव, वार-वार टेढ़े होते रहनेसे उनमें टेढ़े अंकुश जैसा भाव स्थायी हो गया है। खासकर तरुणियोंके वेशके वर्णनमें एक तो मैं वैसे ही अनाड़ी हूं, और उसपर उसकी परिभाषा नहीं जानता। कुलजमा जो दिखाई देता है वह यह है कि ऊपर एक केंचुली-जैसा वारीक फरफराता-हुआ आवरण है और अन्दरके कपड़ेमेंसे एक दूसरे ही रंगका आभास आता रहता है। छातीका वहुत-सा हिस्सा खुला हुआ है, और, खुली-हुई वाहोंको कभी टेविलपर, कभी कुरसीके हत्येपर और कभी परस्पर जड़ित करके जतनकी भङ्गिमामें शिथिल छोड़ रखनेकी साधना उसकी सुसम्पूर्ण है। और जव वह अपनी सुमार्जित नाखूनोंसे रमणीय दो उँगलियोंके वीच सिगरेट दवाकर पीती है तो ऐसा लगता है कि वह जितना अलंकरणके अंगरूपमें है उतना धूमपानके लिए नहीं। सवसे ज्यादा जो वात मनमें दुश्चिन्ताका उद्रेक करती है वह है उसके समुच्च खुरदार जूतोंकी कुटिल भङ्गिमा, मानो वकरी-जातीय जीवके आदर्शको भूलकर नारीके पाँवोंको गढ़न देते समय सृष्टिकर्त्ता गलती कर गये हों, और अव मोची-द्वारा प्रदत्त पदोन्नतिकी विचित्र वक्रतासे धरणीको पीड़ित करके चलनेके द्वारा मानो क्रम-विकाशकी त्रुटि ठीक की जा रही हो।

सिसी अभी तक वीचकी जगहमें है। अन्तकी डिग्री उसे अभी नहीं मिली, पर प्रोमोशन लेती चली जा रही है। ठहाकेकी हँसीसे, वेहद खुशीसे, अनर्गल वातचीतसे उसमें सर्वदा एक प्रकारका चलन-ढलन उवाल लिया करता है, उपासक-मण्डलीमें इसका वहुत आदर है। राधिकाकी वय:सन्धिके वर्णनमें देखा जाता है कि कहीं उसका भाव परिपक्व है तो कहीं अपरिपक्व। सिसीकी भी वही दशा है। खुरदार जूतोंमें युगान्तरका जय-तोरण तो आ गया, किन्तु माथेके अनवच्छिन्न जूड़ेमें अतीत युग ज्योंका त्यों रह गया है। पाँवोंकी ओर साड़ीका अरज दो-तीन इञ्च ओछा है, पर ऊपरके ओढ़नेमें असंवृतिकी सीमा अभी तक लज्जाकी ओर मुंह किये हुए है। अकारण दस्ताने पहननेका अभ्यास है, किन्तु अभी भी एक हाथके वजाय दोनों हाथोंमें सोनेकी एक-एक चूड़ी पड़ी है। सिगरेट पीनेमें अव सिरमें चक्कर नहीं आता, पर पान खानेकी आसक्ति अव भी प्रवल है। विस्कुटकी टीनमें भरकर कोई उसे अचार और अमावट वगैरह भेज दे

तो उसमें उसे आपत्ति नहीं होती। क्रिस्टमसमें प्लम-पूडिंग और तीज-त्योहारके दिन पिठीकी बनी चीज इन दोनोंमेंसे अन्तकी चीजपर ही उसकी लोलुपता कुछ ज्यादा है। फिरंगी नाचवालीसे उसने नाच सीखा है, पर नाचकी सभामें जोड़ी मिलाकर चक्कर-नाच नाचनेमें अब भी उसे जरा संकोच-सा मालूम होता है।

अमितके सम्बन्धमें अफवाहें सुन-सुनके सिसी-लिसी आदि इतनी उद्विग्न हो उठीं कि आखिर उन्हें शिलांग चला आना पड़ा। खासकर इनके परिभाषा-गत श्रेणी-विभागमें लावण्य गवर्नेस है। उनलोगोंकी श्रेणीके पुरुषोंकी जात मारनेके लिए ही उसका 'स्पेशल क्रियेशन' है। सिसी लिसीके मनमें सन्देह नहीं कि धन और सम्मानके लोभसे ही लावण्यने अमित को कसके जकड़ लिया है, और कोई छुड़ाना चाहे तो उस काममें स्त्रियोंको ही सम्मार्जन-पटु हस्तक्षेप करना पड़ेगा। चतुर्मुखने अपनी चार-जोड़ी आँखोंसे स्त्रियोंकी ओर कटाक्ष-पात और पक्षपात एकसाथ ही किया होगा, इसीलिए स्त्रियोंके सम्बन्धमें विचार-बुद्धिमें पुरुषोंको उन्होंने ठोस बेवकूफ बनाकर गढ़ा है। इसीसे स्वजातिके मोहसे मुक्त आत्मीय स्त्रियोंकी सहायताके बिना अनात्मीय स्त्रियोंके मोहजालसे पुरुषोंका उद्धार पाना इतना दुःसाध्य है। फिलहाल 'ऐसे उद्धारकी प्रणाली कैसी हो', इस विषयमें दो नारियोंने आपसमें एक परामर्श तय किया है। निश्चय किया गया है कि शुरुमें अमितको कुछ भी जानने न दिया जाय और उसके पहले ही शत्रु-पक्ष और रणक्षेत्रका भलीभाँति निरीक्षण कर लिया जाय। उसके बाद देख लिया जायगा कि मायाविनीमें कितनी शक्ति है!

शिलांग पहुँचते ही उन्होंने देखा कि अमितके ऊपर एक-फेर गहरा ग्राम्य रंग चढ़ा हुआ है। इसके पहले भी अपने दलके साथ अमितकी भाव-धाराका कोई मेल नहीं था। फिर भी वह उस समय प्रखर नागरिक था, मजा-घसा चमचमाता-हुआ। और अब खुली हवामें रंग कुछ मैला हो गया हो, सो नहीं, बल्कि कुलजमा उसपर मानो पेड़-पौधोंका आमेज-सा लग गया है। मानो वह कच्चा-सा हो गया है, और इनलोगोंकी रायमें कुछ बेवकूफ भी। उसका व्यवहार लगभग साधारण आदमी जैसा हो गया है। पहले वह जीवनके समस्त विषयोंके पीछे हँसीका हथियार लिये

फिरता था, अब उसके वह शौक नहींके बराबर है, और इसीको इनलोगोंने समझ लिया है 'अन्त-समयका लक्षण'।

सिसीने एक दिन साफ-साफ ही कह दिया, "दूरसे हम समझ रही थीं कि तुम शायद खसिया होनेकी तरफ उतर रहे हो। अब देखती हैं कि तुम हो गये हो जिसको कि कहते हैं 'ग्रीन', यहाँके पाइनके पेड़ोंकी तरह, हो सकता है कि पहलेसे स्वास्थ्यकर दशामें हो, पर पहले जैसे इण्टरेस्टिंग नहीं।"

अमितने वर्ड्सवर्थकी कवितामेंसे नजीर पेश करते हुए कहा, "प्रकृतिके संसर्गमें रहते-रहते 'निर्वाक निश्चेतन पदार्थ'की छाप लग जाया करती है शरीर-मनपर, कविने जिसे 'mute insensate things' कहा है।"

सुनकर सिसी सोचने लगी, "निर्वाक निश्चेतन पदार्थके विषयमें हमें कोई शिकायत नहीं, जो लोग बहुत ज्यादा सचेतन हैं और जो लोग बात कहनेकी मधुर प्रगल्भतामें सुपटु हैं उन्हींके विषयमें हमें चिन्ता है।"

इनलोगोंको आशा थी कि लावण्यके विषयमें अमित ही स्वयं बात छेड़ेगा। एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गये, वह बिलकुल चुप है। सिर्फ एक बात अन्दाजसे समझ ली गई कि अमितकी आशा या साधकी नाव फिलहाल कुछ ज्यादा लहरोंमें पड़ी हुई है। इनलोगोंके बिस्तरसे उठके तैयार होनेके पहले ही अमित कहींसे घूमकर वापस आ जाता है, उसके बाद उसका चेहरा देखकर मालूम होता है कि आँधीकी हवामें कदली वृक्षके उन पत्तोंकी तरह जो खंड-खंड होकर लटकते-हिलते रहते हैं, उसका भाव भी शत-विदीर्ण हो रहा है। और भी ज्यादा चिन्ताकी बात यह है कि रवीन्द्रनाथकी किताब भी किसी-किसीने उसके बिस्तरपर पड़ी देखी है। भीतरके पन्नेमें लावण्यके नाममेंसे शुरूका अक्षर लाल स्याहीसे कटा हुआ है। शायद नामके पारस-पत्थरने ही चीजकी कीमत बढ़ा दी है।

अमित क्षण-क्षणमें बाहर निकल जाया करता है। कहता है, 'भूख बढ़ाने जा रहा हूँ।' भूख कहाँ जानेसे बढ़ती है, और भूख उसकी बहुत ही प्रबल है, यह औरोंसे छिपा नहीं था। किन्तु अपर पक्ष ऐसा भोलापनका भाव दिखाता कि मानो शिलांगकी हवामें भूख बढ़ानेकी शक्तिके सिवा और-भी कोई चीज है, इस बातको कोई सोच ही नहीं सकता। सिसी मन-ही-मन हँसती है, और केटी मन-ही-मन जला करती है। अपनी ही

समस्या अमितके लिए इतनी कठिन हो रही है कि वाहरके किसी चांचल्यकी तरफ ध्यान देनेकी उसमें शक्ति ही नहीं। इसीसे वह विना किसी संकोचके इन सखी-युगलसे कह जाता, 'जा रहा हूं एक झरनेकी तलाशमें।' किन्तु इस बातको समझ ही नहीं पाता कि 'झरना किस श्रेणीका है और उसकी गति किस तरफ है' इस विषयमें दूसरोंके मनमें कुछ धोखा या सन्देह हो सकता है। आज कह गया है, "एक जगह नारंगीके शहदका सौदा करने जा रहा हूं।" दोनों वहनोंने अत्यन्त निरीह-भावसे सरल भापामें उससे कहा, "इस अपूर्व मधुके विषयमें हमारे मनमें दुर्दमनीय कुतूहल हो रहा है, हम भी तुम्हारे साथ चलना चाहती हैं।" अमितने कहा, "मार्ग दुर्गम है, वहां पहुंचना यान-वाहनके वूतेके वाहरकी वात है।" इतना कहकर आलोचनाके प्रथम अंशको तोड़के तुरत ही भाग निकला वह। और इस नवीन मधुकरके डैनोंकी चंचलताको देखकर दोनों सखियोंने तय कर लिया कि 'वस अव देर करना ठीक नहीं, आज ही नारंगीके वगीचेपर धावा वोल देना चाहिए।' इधर नरेन गया है घुड़दौड़के मैदानमें। सिसीको साथ ले जानेके लिए उसका वहुत आग्रह था। पर सिसी गई नहीं। इस निवृत्ति या मनाहीको झेलनेमें वेचारेको कितने शम-दमकी जरूरत हुई होगी, इस वातको भुक्तभोगीके सिवा और कौन समझ सकता है!

१५–व्याघात

दोनों सखियां योगमायाके घर जा पहुँचीं, और वगीचेके वाहरका दरवाजा पार होकर आगे वढ़ीं तो वहां उन्हें नौकरोंमेंसे कोई दिखाई नहीं दिया। सहनके पास पहुँचनेपर देख पड़ा कि मकानके चवूतरेपर एक छोटी टेविल लगाकर शिक्षयित्री और छात्रा मिलकर कुछ पढ़ रही हैं। समझनेमें देर न लगी कि इनमेंसे वड़ी लावण्य है।

केटीने खटखट ऊपर चढ़कर अंग्रेजीमें कहा, "दुःखित हूँ।"

लावण्य कुरसी छोड़कर अलग खड़ी हो गई, वोली, "किसको चाहती हैं आप?"

केटीने एक क्षणमें अपनी दृष्टिको लावण्यके अपादमस्तकपर प्रखर झाड़की तरह फेरते हुए कहा, "मिस्टर ऑमिट्राए यहाँ आये हैं या नहीं, हम देखने आई हैं।"

लावण्य सहसा समझ ही न सकी कि ऑमिट्राए किस जातिका जीव है। उसने कहा, "उनको तो हम जानतीं नहीं।"

चटसे दोनों सखियोंकी आँखोंमें विजली-सी दौड़ गई, आँखों-ही-आँखों में परस्पर इशारा हो गया, और चेहरोंपर तिरछी हँसीकी एक डोरी-सी खिंच गई। केटीने झुंझलाकर सिर हिलाते हुए कहा, "हम तो जानती हैं, इस घरमें उनका आना-जाना है oftener than is good for him!"

दोनोंका हावभाव देखकर लावण्य चौंक उठी, समझ गई कि ये कौन हैं और उसने कैसी गलती कर डाली है। लज्जित-सी होकर वह बोली, "माको वुलाये देती हूँ, उनसे आपको सव मालूम हो जायेगा।"

लावण्यके जाते ही केटीने सुरमासे पूछा, "ये तुम्हारी टीचर है?"

"हाँ।"

"नाम शायद लावण्य है?"

"हाँ।"

"गॉट् मैचेस?"

सहसा दिआसलाईकी जरूरतका अन्दाजा न लगा सकनेके कारण सुरमा वातके मानी ही न समझ सकी, मुंहकी ओर ताकती रही।

केटीने कहा, "दिआसलाई है?"

सुरमा दिआसलाईका वक्स उठा लाई। केटीने सिगरेट सुलगाकर उसका कश खींचते हुए सुरमासे पूछा, "अंग्रेजी पढ़ती हो?"

सुरमा स्वीकृति-सूचक सिर हिलाकर तुरत ही तेजीसे भीतर चली गई। केटीने कहा, "गवर्नेससे इस लड़कीने और चाहे जो भी सीखा हो, मैनर्स (शिष्टाचार) नहीं सीखा।"

इसके वाद दोनों सखियोंमें टिप्पणी होने लगी। 'फेमस लावण्य', 'डिल्लीशस', शिलांग-पहाड़को वॉलकैनो वना डाला है, भूकम्पने ऑमिटके हृदय-तटपर दरारें कर दी हैं, इधरसे उधर तक! सिली! मेन आर फनी!

सिसी ठहाका मारकर हँस उठी। इस हँसीमें उदारता थी। क्योंकि पुरुषोंकी मूर्खता उसके लिए कभी भी पश्चात्तापका कारण नहीं बनी। उसने तो पथरीली जमीनमें भी भूकम्प कराया है, उसे बिलकुल टूक-टूक कर डाला है। पर यह कैसी दुनियासे न्यारी बात! एक तरफ केटी जैसी लड़की, और दूसरी ओर यह विचित्र ढंगके कपड़े पहने हुए गवर्नेस! मुंहमें मक्खन दो तो न गले, जैसे भींगे लत्तोंकी पोटली हो। पास बैठो तो मनपर बरसाती बिस्कुटकी तरह फफूंदे पड़ जाते हैं। ऑमिट कैसे इसे एक मोमेण्टके लिए सह लेता है?

"सिसी, तुम्हारे भाई-साहबका मन हमेशा ऊपरको पैर करके चला करता है। न-जाने कौनसी दुनियासे न्यारी उलटी बुद्धिसे इस लड़कीको सहसा उन्होंने एञ्जेल समझ लिया है!"

इतना कहकर केटीने टेबिलपर रखी-हुई ऐलजेब्राकी किताबके सहारे सिगरेट रखकर अपनी चाँदीकी जंजीरदार शृंगारकी थैली निकालकर चेहरे पर जरा-सा पावडर लगा लिया, और अंजनकी पेन्सिलसे भौंहोंकी डोरियाँ जरा-कुछ उभार लीं। भाई-साहबकी विवेकशून्यतापर सिसीको काफी गुस्सा नहीं आता, यहाँ तक कि भीतर-ही-भीतर जरा कुछ स्नेह-सा ही उमड़ आता है। साराका सारा गुस्सा जाकर पड़ता है पुरुषोंकी मुग्ध-नयनविहारिणी जाली एञ्जेलोंपर। भइयाके सम्बन्धमें सिसीकी इस सकौतुक उदासीनतासे केटीका धैर्य टूट जाता है। तबीयत होती है कि उसे पकड़कर खूब जोरसे झकझोर डाले।

इतनेमें, सफेद गरदकी साड़ी पहने योगमाया निकल आई। लावण्य नहीं आई। केटीके साथ आया था आँखों तक ढक देनेवाले बड़े-बड़े बालों-वाला छोटा-सा 'टैब' नामधारी कुत्ता। उसने एक बार घ्राणेन्द्रियसे लावण्य और सुरमाका कुछ परिचय प्राप्त कर लिया था। योगमायाको देखकर सहसा उस कुत्तेके मनमें कुछ उत्साह पैदा हुआ, झटसे आगे बढ़कर उसने सामनेके दोनों पैरोंसे योगमायाकी निर्मल साड़ीपर धूल-मिट्टीके हस्ताक्षर अंकित करके अपनी अकृत्रिम प्रीतिका परिचय दे दिया। सिसी उसकी गरदन पकड़कर खींच लाई केटीके पास। केटीने उसकी नाकपर तर्जनी मारकर कहा, "नॉटी डॉग्!"

केटी कुरसीसे उठी ही नहीं। सिगरेट खींचती हुई अत्यन्त निर्लिप्त और तिरछे ढंगसे जरा-सी गरदन टेढ़ी करके योगमायाका निरीक्षण करने लगी। लावण्यकी अपेक्षा योगमायापर ही शायद उसका ज्यादा आक्रोश है। उसकी धारणा है कि लावण्यके इतिहासमें कोई दोष है। योगमाया ही मौसी बनकर अमितके माथे उसे मढ़ देनेका कौशल कर रही है। पुरुषों को ठगनेके लिए ज्यादा बुद्धिकी जरूरत नहीं होती, स्वयं विधाताकी अपने हाथकी बनाई हुई 'अँधेरी' उनकी दोनों आँखोंपर जन्मसे ही बँधी हुई है।

सिसीने सामनेकी ओर जरा बढ़कर योगमायाको नमस्कारका जरा-सा आभास देते हुए कहा, "मैं सिसी हूँ, अमीकी बहन।"

योगमायाने जरा हँसते हुए कहा, "अमित मुझे मौसी कहता है, उस नातेसे मैं तुम्हारी भी मौसी हुई, बेटी।"

केटीके रंग-ढंग देखकर योगमायाने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया। सिसीसे बोलीं, "आओ बेटी, भीतर चलके बैठें।"

सिसीने कहा, "वक्त नहीं है, सिर्फ पता लगाने आई थी कि अमित यहाँ आये हैं या नहीं।"

योगमायाने कहा, "अभी तक तो नहीं आया।"

"कब आयेंगे मालूम है?"

"ठीक नहीं कह सकती,—अच्छा मैं पूछ आऊँ जरा।"

केटी अपने आसनपर बैठे-बैठे ही तीव्र स्वरमें बोल उठी, "अभी जो मास्टरानी यहाँ बैठी पढ़ा रही थी उसने तो ऐसा भाव दिखाया कि वह ऑमिटको बिलकुल जानती ही नहीं!"

योगमाया चक्करमें पड़ गईं। समझ गईं कि कहीं-न-कहीं कुछ गलत-फहमी हो गई है। यह भी समझ गईं कि इनके आगे इज्जत रखना मुश्किल है। और दूसरे ही क्षण मौसीपनको वापस लेती हुई बोलीं, "सुना है, अमित बाबू आपके होटलमें ही रहते हैं, उनकी खबर आप ही लोगोंको ज्यादा मालूम होनी चाहिए।"

केटी जरा-कुछ स्पष्ट-रूपसे ही हँस दी, जिसे भाषामें व्यक्त किया जाय तो कहना पड़ेगा, 'छिपा सकती हो, पर धोखा नहीं दे सकती।'

असल बात यह है कि शुरूमें ही लावण्यको देखकर, और 'अमितको वह नहीं जानती' यह सुनकर केटी मन-ही-मन आग-बबूला हो रही थी। पर सिसीके मनमें सिर्फ आशंका है, जलन नहीं। योगमायाके सुन्दर चेहरे के गाम्भीर्यने उसके मनको आकर्षित कर लिया था। इसीसे, जब उसने देखा कि केटीने स्पष्ट अवज्ञा करते हुए कुरसी नहीं छोड़ी तब उसके मनमें कैसा-तो एक तरहका संकोच आने लगा। साथ ही उसे किसी विषयमें केटीके विरुद्ध जानेकी हिम्मत भी नहीं हुई, क्योंकि केटीके विद्रोह-दमनमें हाथ तेज चलते हैं, जरा भी विरोध वह नहीं सह सकती। कर्कश व्यवहार करनेमें उसे जरा भी संकोच नहीं होता। अधिकांश मनुष्य ही डरपोक होते हैं, निःसंकोच दुर्व्यवहारके आगे वे हार मान लेते हैं। अपनी निरन्तर की कठोरतापर केटीको एक तरहका गर्व है, खुद जिसे वह 'मिठमुंही भल-मनसाहत' कहती है उसका कोई लक्षण अपनी मित्रमण्डलीके किसीमें मिल जाय तो उसे वह परेशान कर डालती है। रूढ़ताको वह निष्कपटता कहकर बड़ाई किया करती है, और जो इस रूढ़ताके आघातसे संकुचित हैं वे किसी कदर केटीको प्रसन्न रखकर आराम पाते हैं। सिसी उसी दलकी है। वह मन-ही-मन केटीसे जितनी ही डरती है उतनी ही उसकी नकल करती है, दिखाना चाहती है कि वह भी दुर्बल नहीं है। पर हर समय ऐसा उससे नहीं बन पड़ता। केटीने ताड़ लिया था कि उसके व्यवहारके विरुद्ध सिसीके मनमें एक कोनेमें एक तरहकी मुंह छिपानेवाली आपत्ति छिपी हुई है। इसीसे उसने तय किया था कि योगमायाके सामने सिसीके इस संकोचको कड़ाईके साथ तोड़ देना होगा। वह कुरसीसे उठी और एक सिगरेट लेकर उसने सिसीके मुंहमें लगा दी; और अपनी सुलगी-हुई सिगरेट मुंहमें लिये हुए ही उसने सिसीकी सिगरेट सुलगानेके लिए मुंह बढ़ा दिया। 'ना' करनेकी सिसीको हिम्मत नहीं हुई। कोलकियोंमें जरा सुर्खी आ गई। फिर भी जबरदस्ती उसने ऐसा एक भाव दिखाया कि मानो उसके पाश्चात्य भावपर जो लोग जरा भी भौंहें सिकोड़ते हैं उनके मुंहपर वह चुटकी बजाने को तैयार है. that much for it !

ठीक इसी समय अमित आ पहुंचा। लड़कियां तो देखके दंग रह गई। जब वह होटलसे निकला था तब उसके सिरपर था फेल्ट हैट, और

वदनपर था विलायती कोट। यहाँ देखा गया कि वह धोती पहने हुए है और ऊपरसे दुशाला डाल रखा है! इस वेशान्तरका अड्डा था उसका वही 'झोंपड़ा'। वहाँ किताबोंका एक शेल्फ है और कपड़ोंका एक ट्रंक, और योगमायाकी दी-हुई एक आराम-कुरसी भी। होटलमें दोपहरका खाना खाकर वह वहीं चला जाता है। आजकल लावण्यका कड़ा शासन है, सुरमाको पढ़ाते समय झरना या नारंगीकी खोजमें वहाँ किसीको घुसने नहीं दिया जाता। लिहाजा, तीसरे पहर साढ़े-चार वजे चाय-पानकी सभाके पहले, इस घरमें दैहिक या मानसिक किसी प्रकारकी प्यास मिटानेका सौजन्य-सम्मत मौका अमितके लिए नहीं था। इसलिए वेचारा इतना समय किसी कदर विताकर, कपड़े वदलकर, निर्दिष्ट समयपर ही यहाँ आता था।

आज होटलसे निकलनेके पहले ही कलकत्तेसे उसकी अंगूठी आ गई। किस तरह उस अंगूठीको वह लावण्यको पहनायेगा, इस विषयके सम्पूर्ण अनुष्ठानकी वह वहुत देर तक वैठा-वैठा कल्पना करता रहा है। असलमें आज ठहरा उसका एक 'विशेष दिन'। इस दिनको ड्योढ़ीपर विठाये नहीं रखा जा सकता। आज सव काम वन्द हो जाने चाहिए। मन-ही-मन उसने निश्चय कर रखा है कि लावण्य जहाँ वैठी पढ़ा रही है वहाँ जाकर वह कहेगा, 'किसी दिन हाथीपर सवार होकर वादशाह आया था, किन्तु तोरण था छोटा, कहीं सिर न झुकाना पड़े इस वजहसे वह लौट गया था, नये-वने प्रासादमें उसने प्रवेश नहीं किया। आज आया है हमारा एक महादिन, किन्तु तुमने अपने अवकाशका तोरण छोटा कर रखा है, उसे तोड़ो, राजाको सिर उठाये ही अपने घरमें प्रवेश करने दो।'

अमित यह वात भी ध्यानमें रखकर आया था कि लावण्यसे वह कहेगा कि 'ठीक समयपर आनेका ही नाम पंक्चुऐलिटी है, किन्तु घड़ीका समय ठीक समय नहीं है। घड़ी तो सिर्फ समयके नम्वर जानती है, समयकी कीमत कैसे जान सकती है वह?

अमितने वाहरकी ओर निगाह उठाकर देखा, वादलोंसे आकाश म्लान हो रहा है, उजालेकी शकल शामके पाँच-छै वजेकी-सी हो रही है। अमितने घड़ी नहीं देखी, इस डरसे कि कहीं घड़ी अपने अभद्र इशारेसे आकाशका

प्रतिवाद न कर बैठे। वैसे ही जैसे बहुत दिनोंसे ज्वरसे पीड़ित बच्चेकी मा लड़केकी देह जरा ठंडी देखती है तो फिर उसे थर्मामीटर लगानेकी हिम्मत नहीं पड़ती कि कहीं उसमें बुखारकी गरमी न आ जाय। अमित आज निर्दिष्ट समयसे काफी पहले आ गया था। कारण, दुराशा निर्लज्ज होती है।

बरामदेमें जिस जगह बैठकर लावण्य अपनी छात्राको पढ़ाती है, रास्तेसे आते हुए वह जगह दिखाई देती है। आज देखा कि वह जगह सूनी है। अमितका मन आनन्दके मारे उछल उठा। अब उसने घड़ीकी तरफ नजर उठाकर देखा, अभी तक तीन बजके बीस ही मिनट हुए हैं! उस दिन उसने लावण्यसे कहा था, 'नियम पालन करना मनुष्यका काम है और अनियम देवताओंका। मर्त्यमें हम नियमोंकी साधना इसीलिए करते हैं कि स्वर्गमें हमें अनियम-अमृतपर अधिकार प्राप्त हो। वह स्वर्ग कभी-कभी मर्त्यमें ही दिखाई दे तो जरूर नियम तोड़कर उसे अभिनन्दनके साथ ग्रहण करना चाहिए।' उसे आशा हुई कि लावण्यने नियम तोड़नेके गौरवको समझ लिया शायद, लावण्यके मनपर सहसा आज किसी तरह विशेष दिनका स्पर्श लग गया है, साधारण दिनकी चहारदीवारी आज टूट गई।

पास पहुंचकर उसने देखा कि योगमाया अपने कमरेके बाहर स्तब्ध-सी खड़ी हैं, और सिसी केटीके मुंहकी जलती-हुई सिगरेटसे अपने मुंहमें लगी सिगरेट सुलगा रही है! योगमायाका यह असम्मान इच्छाकृत है, इस बातको समझनेमें उसे देर न लगी। 'टैबी' कुत्ता अपनी प्रथम मैत्रीके उच्छ्वासमें बाधा पाकर केटीके पैरोंके पास पड़ा जरा सो लेनेकी कोशिश कर रहा था। अमितके पहुंचते ही वह उसका स्वागत करनेके लिए फिर असंयत हो उठा। सिसीने फिर उसे ताड़ना देकर समझा दिया कि 'उसकी इस सौजन्य-प्रकाशन-पद्धतिका यहां कोई आदर नहीं होनेका।'

दोनों सखियोंकी ओर बगैर देखे ही अमितने दूरसे ही 'मौसीजी' कहकर पुकारा, और फिर उनके पैरोंके पास झुककर पांव छुए। नन्हकर उस समय इस तरहसे प्रणाम करना उसकी प्रथामें नहीं था। उसने पूछा, "मौसीजी, लावण्य कहां है?"

"क्या मालूम, बेटा, घरमें ही कहीं होगी।"

"अभी तो उसके पढ़ानेका समय खतम नहीं हुआ।"

"शायद इनलोगोंके आ-जानेसे छुट्टी लेकर भीतर चली गई है।"

"चलो, एक दफे देख आयें वह क्या कर रही है।"

योगमायाको लेकर अमित भीतर चला गया। सामने और भी कोई सजीव वस्तु है इस वातकी उसने सम्पूर्णतया उपेक्षा की।

सिसी जरा जोरसे वोल उठी, "अपमान! चलो, केटी, घर चलें।"

केटी भी कम नहीं जली। पर, आखिर तक देखे वगैर वह जाना नहीं चाहती। सिसीने कहा, "कोई नतीजा नहीं निकलेगा!"

केटीकी वड़ी-वड़ी आँखें फट-सी गईं, वह वोली, "निकलेगा कैसे नहीं, निकलके रहेगा!"

और भी थोड़ा-सा समय वीत गया। सिसीने फिर कहा, "चलो, वहन, अव जरा भी ठहरनेको तवीयत नहीं होती।"

केटी वरामदेमें धरना दिये वैठी रही। वोली, "आखिर यहाँसे तो उन्हें निकलना ही पड़ेगा।"

आखिर अमित वहाँ आया, और साथमें ले आया लावण्यको। लावण्य के मुंहपर एक तरहकी निर्लिप्त शान्ति थी। उसमें जरा भी क्षोभ नहीं, दम्भ नहीं, अभिमान नहीं। योगमाया पीछेके कमरेमें ही थीं, उनकी वाहर आनेकी इच्छा नहीं थी। अमित उन्हें भी पकड़ लाया। क्षण-भरमें केटीकी नजर पड़ गई लावण्यके हाथकी अंगूठीपर। उसके माथेका खून खौल उठा, आँखें हो उठीं लाल-सुर्ख, पृथ्वीको लात मारनेकी इच्छा होने लगी।

अमितने कहा, "मौसीजी, यह मेरी वहन है, शमिता। पिताजीने शायद मेरे नामके साथ छन्द मिलाकर नाम रखा था, पर रह गया अमित्राक्षर। ये हैं केतकी, मेरी वहनकी सखी।"

इस वीचमें एक और उपद्रव खड़ा हो गया। सुरमाकी एक पालतू विल्लीके वाहर निकलते ही टैवीने अपनी कुक्कुरीय नीतिमें उस स्पर्धाको युद्ध-घोषणका वैध कारण मान लिया। वह एक वार अग्रसर होकर उसे फटकारता और फिर उसके उद्यत नाखून और फुसकारको देखकर युद्धके आशुफलके सम्वन्धमें संशयापन्न होकर लौट आता। ऐसी अवस्थामें कुछ दूरसे ही अहिंस्र गर्जन-नीतिको निरापद वीरता प्रकट करनेका उपाय समझ कर उसने जोर-शोरसे चीत्कार करना शुरू कर दिया। विल्ली उसका

कुछ प्रतिवाद किये बगैर ही पीठ फुलाकर चली गई। अब केटीसे सहा नहीं गया। प्रबल आक्रोशसे कुत्तेके कान ऐंठने लगी वह। इस 'कान ऐंठने'का बहुत-सा अंश अपने भाग्यके प्रति ही था। कुत्तेने क्यांव-क्यांव करके इस असद्व्यवहारके सम्बन्धमें अपना तीव्र अभिमत प्रकट किया। भाग्य चुपके-चुपके हँस दिया।

इस शोर-गुलके जरा-कुछ थम जानेपर अमितने सिसीको लक्ष्य करके कहा, "सिसी, इन्हींका नाम है लावण्य। मुझसे तुमने इनका नाम कभी नहीं सुना, पर मालूम होता है औरोंके मुंहसे सुना होगा। इनसे मेरा ब्याह होना तय हो गया है, कलकत्तेमें, अगहनमें होगा।"

केटीने अपने चेहरेपर हँसी खींच लानेमें देर नहीं की। बोली, "आई कॉन्ग्रेचुलेट, बधाई है।" और फिर कहने लगी, "नारंगीका मधु पानेमें विशेष बाधा नहीं हुई मालूम होता है। रास्ता मुश्किल नहीं था, मधु उछलकर अपने-आप ही आ गया है मुंहके पास।"

सिसी अपने स्वाभाविक अभ्यासके अनुसार ही-ही करके हँस उठी।

लावण्य समझ गई कि उसकी बातमें तीखी चुटकी है, पर उसका भीतरी अर्थ उसकी समझमें नहीं आया।

अमितने उससे कहा, "आज होटलसे चलते समय इनलोगोंने मुझसे पूछा था, 'कहाँ जा रहे हो,' तो मैंने कहा था, 'जंगली मधुकी खोजमें।' इसीसे ये हँस रही हैं। यह मेरा ही दोष है, इस बातको लोग ताड़ ही नहीं पाते कि मेरी कौन-सी बात हँसीकी नहीं है।"

केटीने शान्त स्वरमें ही कहा, "नारंगीका मधु पाकर तुम्हारी तो जीत हो गई, अब मेरी भी जिससे हार न हो ऐसा करो।"

"क्या करना होगा, बताओ?"

"नरेनसे मेरी एक होड़ लगी हुई है। उसने मुझसे कहा था, 'जेण्टिल-मैन लोग जहाँ जाते हैं वहाँ कोई भी तुम्हें नहीं ले जा सकता, इसलिए तुम रेस देखने नहीं जा सकते।' मैंने अपनी हीरेकी अंगूठीकी होड़ लगाई है, आज घुड़दौड़में तुम्हें ले ही जाऊंगी। इस देशमें जितने भी झरने हैं, जितनी भी मधुकी दूकानें हैं, सबकी खोज कर-कराके अन्तमें यहां आकर तुम्हारे दर्शन मिले।" और फिर सिसीकी तरफ देखकर बोली, "तुम्हीं कहो, बहन

सिसी, कितना फिरना पड़ा है जंगली वतकके शिकारकी कोशिशमें, जिसे अंग्रेजीमें कहते हैं wild goose।"

सिसी विना कुछ जवाव दिये हँसने लगी। केटी कहने लगी, "याद है वह कहानी, एक दिन तुम्हींसे सुनी थी, ऑमिट! कोई एक पर्सियन फिलॉसॉफर अपने पगड़ी-चोरका पता न लगा सकनेके कारण अन्तमें वह कवरिस्तानमें जा वैठा था, कहता था, भागके जायगा कहाँ। मिस लावण्य जव कह रही थीं कि 'तुम्हें नहीं जानतीं', मुझे चक्करमें डाल दिया था, पर मेरे मनने कहा, घूम-फिरकर उन्हें इस कवरिस्तानमें तो आना ही पड़ेगा।"

सिसी ठहाका मारकर हँस पड़ी।

केटीने लावण्यसे कहा, "ऑमिट आपका नाम जवानपर नहीं लाये, मधुर भाषामें घुमाकर वोले, 'नारंगीका मधु'! आपकी वुद्धि वहुत ही ज्यादा सरल है, घुमाकर कहनेकी तरकीव जवान तक नहीं आती, चटसे कह वैठीं, ऑमिटको जानती ही नहीं! फिर भी सन-डे स्कूलके विधानके अनुसार फल नहीं हुआ, दण्डदाताने आपलोगोंको कोई दण्ड ही नहीं दिया, कठिन रास्तेका मधु भी एक जनेने एक ही घूंटमें निगल लिया, और अपरिचितको भी एक जनेने एक ही दृष्टिमें जान लिया। अव क्या सिर्फ मेरे ही भाग्यमें हार वदी है? देखो तो, सिसी, कैसा अन्याय है।"

सिसी फिर पहलेकी तरह जोरसे हँस दी। टैवी कुत्तेने भी उच्छ्वासमें शरीक होनेको अपना सामाजिक कर्तव्य समझकर चंचल होनेका लक्षण दिखाया। और तीसरी वार फिर उसे दमन किया गया।

केटीने कहा, "ऑमिट, तुम जानते हो, हीरेकी अंगठीको अगर हार जाऊँ, तो फिर संसारमें मेरे लिए कोई सान्त्वना ही न रह जायगी। यह अंगूठी किसी दिन तुम्हींने दी थी। एक क्षणके लिए भी मैंने यह हाथसे नहीं उतारी, यह मेरी देहके साथ एक हो गई है। आखिरकार आज इस शिलांग-पहाड़पर क्या इसे होड़में खोना पड़ेगा?"

सिसीने कहा, "होड़ वदने ही क्यों चली थीं, वहन?"

"मन-ही-मन अपनेपर अहंकार था, और आदमीपर था विश्वास। अहंकार टूट गया, इस वारकी मेरी 'रेस' खतम हो गई, मेरी ही हार हुई। मालूम होता है ऑमिटको अव मैं राजी नहीं कर सकती। पर इस तरह

अद्भुत ढंगसे ही मुझे हराना था, तो उस दिन इतने आदरसे अंगूठी दी क्यों थी? उस देनेमें क्या कोई बन्धन नहीं था? उस देनेमें क्या यह वचन नहीं था कि मेरा अपमान तुम कभी न होने दोगे?" कहते-कहते केटीका गला भर आया, बड़ी मुश्किलसे उसने आँसू सम्हाल लिये।

आज सात साल हो गये, केटीकी तब उमर थी अठारह। उस दिन यह अंगूठी अमितने अपनी उंगलीसे खोलकर उसे पहना दी थी। तब वे दोनों ही इंगलैण्डमें थे। ऑक्सफोर्डमें एक पंजाबी युवक था केटीके प्रणयमें मुग्ध। उस दिन आपसमें अमितने उस पंजाबीके साथ नदीमें बोट-रेस (नावकी होड़) खेली थी। अमितकी ही जीत हुई। जून महीनेकी चाँदनीमें सारा आकाश मानो बातें करने लग गया था, बाग-बगीचों और मैदानोंमें फूलोंके अनेकों वैचित्र्यसे धरणीने मानो अपना धैर्य खो दिया था। उन्हीं क्षणोंमें अमितने केटीकी उंगलीमें अंगूठी पहना दी थी। उसमें बहुतसी बातें अनुक्त (बिन-कही) थीं, किन्तु कोई भी बात छिपी हुई नहीं थी। उस दिन केटीके चेहरेपर श्रृंगारका प्रलेप नहीं लगा था, उसकी हँसी स्वाभाविक थी, भावके आवेगमें उसका चेहरा सुर्ख होनेमें बाधा नहीं मानता था। अंगूठी पहना चुकनेके बाद अमितने उसके कानमें कहा था —

Tender is the night
And haply the queen moon is on her throne.

केटीने तब ज्यादा बात करना नहीं सीखा था। एक गहरी साँस लेकर मन-ही-मन सिर्फ इतना कहा था, "मॉन् अमी", फरासीसी भाषामें जिसका अर्थ है 'प्रियतम'।

आज अमितकी जबान भी जवाब देनेमें अटक गई। सोच ही न सका कि क्या कहे।

केटीने कहा, "होड़में अगर हार ही गई हूं तो यह मेरा हमेशाका हारका चिह्न तुम्हारे ही पास रहने दो, ऑमिट। अपने पास रखकर इसे मैं झूठ नहीं बोलने दूंगी।" इतना कहकर अंगूठी खोलकर उसने टेबिलपर रख दी, और तुरन्त ही वहांसे वह आंधीकी तरह तेजीसे चली गई। रूज किये-हुए चेहरेपरसे आंसुओंकी धारा बहने लगी।

१६– मुक्ति

एक छोटी-सी चिट्ठी आई लावण्यके पास, शोभनलालकी लिखी-हुई :–

"कल रातको मैं शिलांग आया हूँ। अगर मिलनेकी अनुमति दो, तो मैं मिलने आऊँगा। अगर न दो, तो कल ही वापस चला आऊँगा। मुझे तुमसे दण्ड तो मिला, किन्तु मुझसे कब क्या अपराध बन पड़ा, सो आज तक मैं स्पष्टरूपसे नहीं जान सका। आज आया हूँ तुम्हारे पास उस बातको सुननेके लिए, नहीं-तो मनमें शान्ति नहीं मिल रही। डरना मत। मेरी और कोई भी प्रार्थना नहीं है।"

लावण्यकी आँखें भर आईं। आँसू पोंछ डाले उसने। चुपचाप बैठी पीछे मुड़कर देखती रही अपने अतीतकी ओर। जो अंकुर बड़ा होकर विकसित हो सकता था, जिसको कि उसने उगते ही दबा दिया, बढ़ने नहीं दिया, उसकी उस कच्चेपनकी करुण भीरुताकी उसे याद आ गई। अब तक वह उसके सम्पूर्ण जीवनपर अधिकार करके उसे सफल कर सकता था। किन्तु उस दिन उसमें था ज्ञानका गर्व, विद्याकी एकनिष्ठ साधना, उद्धत स्वातंत्र्य-बोध। उस दिन अपने पिताकी मुग्धताको देखकर प्रेमको दुर्बलता बताकर उसने मन-ही-मन उसे धिक्कारा है। प्रेमने आज उसका बदला लिया है। उसका अभिमान आज धूलमें मिल गया। उस दिन जो बात सहजमें हो सकती थी साँस-उसासकी तरह, सरल हँसीकी तरह, आज वह कठिन हो उठी। उस दिनके जीवनके इस अतिथिको बाँह पसारकर ग्रहण करनेमें आज बाधा आ पड़ती है और उसे त्याननेमें भी छाती फटती है। याद उठ आई अपमानित शोभनलालकी उस दिनकी संकुचित व्यथित मूर्तिकी। उसके बाद कितने दिन बीत गये, युवकका वह प्रत्याख्यात प्रेम इतने दिन किस अमृतसे जीवित रहा? अपने ही आन्तरिक महात्म्यसे।

लावण्यने अपनी चिट्ठीमें लिखा :—

"तुम मेरे सबसे बड़े बन्धु हो। इस बन्धुत्वका पूरा मूल्य दे सकूं ऐसा धन आज मेरे हाथमें नहीं है। तुमने किसी दिन मूल्य नहीं चाहा, आज भी तुम अपनी देनेकी चीज ही देने आये हो, बगैर किसी दावेके। 'नहीं चाहिए' कहकर लौटा सकूं ऐसी शक्ति मुझमें नहीं है, और न ऐसा अहंकार ही है।"

चिट्ठी लिखकर भेज दी। इतनेमें अमितने आकर कहा, "वन्या, चलो आज दोनों जने घूम आयें।"

अमितने डरते हुए ही कहा था, सोचा था कि लावण्य शायद चलनेको राजी नहीं होगी। लावण्यने सहज ही में कहा, "चलो।"

दोनों चल दिये घूमने। अमितने कुछ दुविधाके साथ ही लावण्यका हाथ अपने हाथमें लेनेकी चेष्टा की। लावण्यने जरा भी वाधा न देकर हाथ पकड़ने दिया। अमितने हाथको जरा जोरसे मसक दिया जैसे उसकी मनकी वात जितनी भी व्यक्त हो सकती थी उससे ज्यादा उसकी जवानपर कुछ नहीं आया। चलते-चलते दोनों उस दिनकी उसी जगह आ पहुँचे, जहाँ जंगलमें सहसा जरा खुला-हुआ-सा है। एक वृक्षशून्य पहाड़की चोटीपर सूर्य अपना अन्तिम स्पर्श देकर उतर गया। अति-सुकुमार हरियालीकी आभा धीरे-धीरे सुकोमल नीलिमामें विलीन हो गई। और ये दोनों वहाँ ठहरकर उसी ओर मुंह किये खड़े रहे।

लावण्यने धीरेसे कहा, "एक दिन एक-जनीको जो अंगूठी पहनाई थी, मेरे द्वारा उसकी वह अंगूठी क्यों खुलवाई?"

अमितने व्यथित होकर कहा, "तुम्हें सब बातें समझाऊं कैसे, वन्या! उस दिन मैंने जिसे अंगूठी पहनाई थी, और आज जिसने उसे खोलकर लौटा दिया, वे दोनों क्या एक ही हैं?"

लावण्यने कहा, "उनमेंसे एक सृष्टिकर्ताके लाड़-प्यारसे वनी हुई थी, और दूसरी तुम्हारे अनादरसे वनी है।"

अमितने कहा, "वात सम्पूर्णतः ठीक नहीं है। जिस आघातसे आजकी केटी वनी है उसका दायित्व सिर्फ मुझ अकेलेपर नहीं है।"

"किन्तु, मीता, अपनेको जिसने एक दिन सम्पूर्णरूपसे तुम्हारे हाथ सौंप दिया था, उसे तुमने अपनी वनाकर क्यों नहीं रखा? जिस भी कारणसे हो, पहले तुम्हारी मुट्ठी ढीली हुई है, उसके बाद अन्य दस-पांचके मनके अनुकूल वह अपनेको सजाने बैठ गई होगी। और आज तो देखती हूं, वह विलायती दूकानकी गुड़िया वन गई है। ऐसा सम्भव न होता अगर उसका हृदय जीवित रहता। जाने दो इन-सब बातोंको। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। माननी पड़ेगी।"

"बोलो, जरूर मानूंगा।"

"कमसे कम एक सप्ताहके लिए तुम अपने दलको लेकर चेरापुञ्जी घूम आओ। उसे आनन्द अगर न भी पहुंचा सको, तो कमसे कम आमोद तो दे ही सकते हो।"

अमित जरा चुप रहकर बोला, "अच्छा।"

उसके बाद लावण्यने अमितकी छातीके पास अपना मुंह दुबकाते हुए कहा, "एक बात तुमसे कहती हूं, मीता, फिर कभी न कहूंगी। तुम्हारे साथ मेरा जो अन्तरंग सम्बन्ध है उसके लिए तुमपर लेशमात्र दायित्व नहीं। मैं नाराजीसे नहीं कह रही, अपने सम्पूर्ण प्रेमसे ही कह रही हूं, मुझे तुम अंगूठी मत दो। कोई चिह्न रखनेकी कतई आवश्यकता नहीं, मीता, मेरे प्रेमको निरंजन ही रहने दो। बाहरकी रेखा बाहरकी छाया उसपर नहीं पड़ेगी।" इतना कहकर उसने अपनी उंगलीसे अंगूठी खोलके धीरेसे अमित की उंगलीमें पहना दी। अमितने इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी।

संध्याकी इस पृथ्वीने जैसे अस्त-रश्मिसे उद्भासित आकाशकी ओर चुपकेसे अपना मुंह उठाया, ठीक वैसी ही नीरवतासे, वैसी ही शान्त दीप्ति से लावण्यने अपना मुंह उठा दिया अमितके झुके-हुए मुंहकी ओर।

सात दिन बीतते ही अमित वापस आकर योगमायाके उस मकानमें गया। घर बन्द था। सब-कोई चले गये हैं। कहां गये, इसका कोई पता-ठिकाना नहीं छोड़ गये। उसी युकैलिप्टस-पेड़के नीचे वह जा खड़ा हुआ। कुछ देर तक सूने मनसे वहीं घूमता रहा। परिचित मालीने आकर सलाम किया और पूछा, "घर खोल दूं, बाबू सा'ब? भीतर बैठेंगे?"

अमितने जरा-कुछ दुविधाके साथ कहा, "हां।"

भीतर जाकर वह लावण्यके बैठनेके कमरेमें गया। कुरसी टेबिल शेल्फ सब-कुछ है, पुस्तकें नहीं हैं। फर्शपर दो-एक फटे-हुए रीते लिफाफे पड़े हैं, उनपर अज्ञात हाथके अक्षरोंमें लावण्यका नाम और पता लिखा है। टेबिलपर दो-चार इस्तेमाल किये-हुए निब पड़े हैं और एक क्षयप्राप्त अत्यन्त छोटी पेन्सिल। पेन्सिल उठाकर उसने जेबमें रख ली। इसके बगलमें ही लावण्यका सोनेका कमरा था। उसमें जाकर देखा, लोहेके

पलंगपर सिर्फ एक गद्दी और आईनेकी टेबिलपर एक रीती तेलकी शीशी पड़ी है। दोनों हथेलियोंपर अपना सिर रखकर अमित उस गद्दीपर चित लेट गया, लोहेका पलंग आवाज कर उठा। उस कमरेमें एक तरहकी गूंगी शून्यता है। उससे कोई बात पूछी जाय तो वह उसका कुछ जवाब ही नहीं दे सकती। वह एक मूर्छा है, जो कभी भी दूर नहीं होनेकी।

इसके बाद, शरीर और मनपर निरुद्यमका एक बोझ-सा लेकर अमित अपनी कुटियाकी ओर चल दिया। जो कुछ जैसे वह छोड़ गया था, सब ज्योंका त्यों पड़ा हुआ है। यहाँ तक कि योगमाया अपनी आरामकुरसी भी वापस नहीं ले गईं। समझ गया कि मौसीजी स्नेहसे ही कुरसी उसे दे गई हैं। उसे ऐसा लगा जैसे अभी-अभी उसे सुनाई दिया हो, उनका वह शान्त मधुर स्वरका आह्वान, 'बेटा'। उस कुरसीके सामने सिर टेककर अमितने प्रणाम किया।

सारे शिलांग-पहाड़की श्री आज चली गई है। अमितको अब कहीं भी सान्त्वना नहीं मिल रही।

१७—आखिरी कविता

यतिशंकर कलकत्तेके एक कॉलिजमें पढ़ता है। रहता है प्रेसिडेन्सी कॉलिजके कोल्हूटोला-वाले मेसमें। अमित उसे अक्सर अपने घर ले आया करता है, खिलाता-पिलाता है, उसके साथ तरह-तरहकी पुस्तकें पढ़ता है, तरह-तरहकी अद्भुत बातोंसे उसके मनको चौंका दिया करता है; और मोटरमें बिठाकर उसे घुमा भी लाता है।

फिर कुछ दिनों तक यतिशंकरको अमितकी कोई निश्चित खबर ही नहीं मिली। कभी सुना कि वह नैनीतालमें है, कभी मालूम हुआ कि उटाकमण्ड चला गया है। एक दिन सुना, अमितके एक मित्रने कहा था कि आजकल वह केटी मित्तिरकी बाहरी रंग पुतानेमें कसकर लगा हुआ है। काम मिला है मनचाहा, वर्ण बदलनेका। अब तक अमित मूर्ति गढ़नेका शौक मिटाया करता था बातोंसे, आज उसे मिल गया है सजीव आदमी। और वह आदमी भी ऐसा कि एक-एक [illegible]

रंगीन पपड़ियाँ छुड़ा फेंकनेमें राजी है, अन्तमें फल प्राप्त होगा इस आशासे। लोग कहते हैं, अमितकी वहन सिसीका कहना है कि केटीको अव विलकुल पहचाना ही नहीं जा सकता, अर्थात् अव वह वहुत ज्यादा स्वाभाविक-सी मालूम होती है। मित्रमण्डलीमें उसने कह दिया है कि उसे अव 'केतकी' कहा जाय। यह उसके लिए निर्लज्जता है, जो स्त्री किसी समय वारीक शान्तिपुरी साड़ी पहना करती थी उस लज्जावतीके हाल-फैशनकी पोशाक पहननेके समान। यह भी सुना गया है कि अमित एकान्तमें उसे 'केवा' कहके सम्वोधित करता है। लोग इस वातकी भी कानाफूसी करते हैं कि नैनीताल के सरोवरमें नाव वहाकर केटीने उसकी पतवार थामी है और अमितने उसे पढ़के सुनाई है रवीन्द्रकी 'निरुद्देश यात्रा'। परन्तु, लोग क्या नहीं कहते। यतिशंकरने समझ लिया है कि अमितका मन पाल चढ़ाकर चल दिया है छुट्टी-तत्त्वके वीच दरियामें।

अन्तमें अमित लौट आया। शहरमें वात फैल गई कि केतकीके साथ उसका व्याह होगा। और मजा यह कि अमितके अपने मुंहसे एक दिन भी यतीने इसका जिक्र नहीं सुना। अमितके व्यवहारमें भी वहुत-कुछ रद्दो वदल हो गया है। पहलेकी तरह अव भी वह यतीको अंग्रेजी कितावें खरीदकर उपहारमें दिया करता है, पर उसके साथ शामको वैठकर उन-सव कितावोंकी आलोचना नहीं करता। यती समझ गया है कि आलोचनाकी धारा अव दूसरे एक नये रास्तेसे वह रही है। आजकल मोटरमें घूमने जानेके लिए वह यतीको नहीं वुलाता। यतीकी उमरमें यह वात समझना कठिन नहीं है कि अमितकी 'निरुद्देश-यात्रा'की पार्टीमें तीसरे व्यक्तिके लिए जगह होना असम्भव है।

यतीसे अव रहा नहीं गया। अमितसे उसने खुद ही अपनी तरफसे गर्ज दिखाकर पूछा, "अमित भाई सा'व, सुना है कि मिस केतकी मित्रके साथ तुम्हारा व्याह होगा?"

अमितने जरा चुप रहकर कहा, "लावण्यको क्या यह वात मालूम हो गई है?"

"नहीं, मैंने उन्हें नहीं लिखा। तुम्हारे मुंहसे पक्की खवर नहीं मिली, इसीलिए चुप हूं।"

"खबर सच है, पर लावण्य शायद गलत समझ जायेंगी।"

यतीने हँसते हुए कहा, "इसमें गलत समझनेकी गुंजाइश कहां है? व्याह अगर करोगे तो व्याह ही करोगे, सीधी वात है।"

"देखो, यती, आदमीकी कोई वात ही सीधी नहीं होती। कोशमें हम जिस शब्दका एक अर्थ वांध देते हैं, मानव जीवनमें उस अर्थके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, जैसे समुद्रकी गोदमें गंगाके।"

यतीने कहा, "अर्थात् तुम कह रहे हो कि 'विवाह'का अर्थ विवाह नहीं है?"

"मैं कह रहा हूं, 'विवाहके हजार अर्थ हैं'। आदमीके साथ मेल मिलाकर उसके अर्थ होते हैं, आदमीको अलग करके उसके अर्थ लगाये जायें तो पहेली वन जाती है।"

"तो तुम अपना विशेष अर्थ ही क्यों नहीं वता देते?"

"संज्ञासे नहीं वताया जा सकता, जीवनसे वताना पड़ेगा। अगर कहूं कि उसका मूल-अर्थ है 'प्रेम', तो भी और-एक विपदमें जा पड़ूंगा, 'प्रेम' शब्द 'विवाह' शब्दकी अपेक्षा और भी अधिक जीवित है।"

"तव तो, भाई साहव, इस तरह तो वात ही करना वन्द कर देना पड़ेगा। शब्दोंको कंधेपर लिये-लिये अर्थके पीछे-पीछे दौड़ना पड़ेगा; और अर्थ वायेंसे खदेड़े तो दाहिने और दाहिनेसे खदेड़े तो वायें भागना पड़ेगा,—ऐसे तो काम नहीं चलनेका।"

"भाई, तुमने वेजा तो नहीं कहा। मेरे साथ रहते-रहते तुम्हारी ज़वान खुल गई है। संसारमें काम तो किसी तरह चलाना ही पड़ता है, इसलिए शब्दोंकी अत्यन्त जरूरत है। जिन सत्योंको शब्दोंमें नहीं कहा जा सकता, व्यवहारके वाजारमें मैं उनको छांट देता हूं; और शब्दोंसे ही काम चलाता हूं। और उपाय ही क्या है? इससे मीमांसा भले ही ठीक न हो, पर और मौकेपर काम चलाया जा सकता है।"

"तो क्या आजकी वातको विलकुल ही खतम कर जाना होगा?"

"यह आलोचना अगर महज ज्ञानके लिए हो, हृदयके लिए न हो तो उसे खतम करनेमें कोई दोष नहीं।"

"मान लो, हृदयके लिए ही है।"

"शावाश ! तो सुनो।"

यहाँ जरा-सी टिप्पणी लगा देनेमें कोई दोप न होगा। यतिशंकर आजकल अकसर अमितकी छोटी वहन लिसीके हाथकी चाय पीया करता है। अनुमान किया जा सकता है कि इसी कारण उसके मनमें इस वातका किंचिन्मात्र भी क्षोभ नहीं कि अमितने उसके साथ तीसरे पहर साहित्यालोचना करना और शामको मोटरमें घूमना वन्द कर दिया है। अमितको उसने सर्वान्तःकरणसे क्षमा कर दिया है।

अमित कहने लगा, "ऑक्सिजेन एक रूपमें तो वहती रहती है हवामें अदृश्य रहकर, उसके विना प्राण नहीं वच सकते, और दूसरे रूपमें वह कोयलेके साथ जलती रहती है, वह आग जीवनके अनेक कामोंमें आवश्यक है, दोनोंमेंसे किसीका भी वहिष्कार नहीं किया जा सकता। अव समझ गये ?"

"पूरी तरह नहीं समझा, पर समझनेकी इच्छा जरूर है।"

"जो प्रेम व्याप्त-रूपसे आकाशमें मुक्त रहता है, अन्तःकरणमें वह देता है 'संग' यानी साथ, और जो प्रेम विशेषरूपसे प्रतिदिनके सव-कुछसे युक्त रहता है, संसारमें वह देता है 'आसंग' यानी सहवास। मैं दोनों ही चाहता हूं।"

"तुम्हारी वात ठीक समझ रहा हूं या नहीं, यही समझमें नहीं आता। और जरा खुलासा करके वताओ, भाई साहव।"

अमितने कहा, "एक दिन मैंने अपने सम्पूर्ण डैने फैलाकर पाया था अपना उड़नेका आकाश, आज मैंने पाया है अपना छोटा-सा नीड़। अव डैने समेटकर आ वैठा हूं उसी घोंसलेमें, किन्तु मेरा आकाश भी ज्योंका त्यों वना हुआ है।"

"किन्तु, विवाहमें तुम्हारे वह 'संग' और 'आसंग' क्या एकसाथ ही नहीं मिल सकते ?"

"जीवनमें वहुत-से सुयोग मिल सकते हैं, पर मिलते नहीं। जिस आदमीको आधा राज्य और राजकन्या दोनों एक-ही-साथ मिल जाते हैं उसका भाग्य अच्छा है, जिसे वह नहीं मिलता उसे दैवसे अगर दाहिनी तरफ से मिले राज्य और वाईं तरफसे मिल जाय राजकन्या तो वह भी कम सौभाग्य की वात नहीं।"

"किन्तु – "

"किन्तु, तुम जिसे समझते हो रोमान्स, उसमें कमी पड़ जाती है, यही न? जरा भी नहीं। कहानीकी पुस्तकोंमेंसे ही हमें रोमान्सकी वँधी-हुई खूराक उसी साँचेमें ढालकर जुटानी पड़ेगी क्या? कदापि नहीं। अपना रोमान्स मैं खुद वनाऊंगा। मेरे स्वर्गमें भी रोमान्स रहेगा और मर्त्यमें भी रोमान्सकी सृष्टि करूंगा मैं। जो लोग इनमेंसे एकको वचानेके लिए दूसरेको दिवालिया वना देते हैं, उन्हींको तुम कहते हो रोमाण्टिक! वे या तो मछलीकी तरह पानीमें तैरते हैं, या विल्लीकी तरह जमीनपर घूमते हैं, अथवा चमगादड़की तरह आकाशमें चक्कर लगाते हैं। मैं रोमान्सका परमहंस हूं। प्रेमके सत्यको मैं एक ही शक्तिसे जल-स्थलमें उपलब्ध करूंगा और आकाशमें भी। नदीके टापूपर तो रहेगा मेरा पक्का दखल, और मानसकी ओर जव मैं यात्रा करूंगा तव वह होगी आकाशके मुक्त मार्गसे। जय हो मेरी लावण्यकी, जय हो मेरी केतकीकी, और सभी तरफसे धन्य हो अमित राय!"

यतिशंकर स्तब्ध होकर वैठा रहा, शायद वात उसे ठीक जंची नहीं। अमितने उसका चेहरा देखकर मुसकराते हुए कहा, "देखो, भाई, सव वातें सवके लिए नहीं होतीं। मैं जो कुछ कह रहा हूं, हो सकता है कि वह सिर्फ मेरी ही वात हो। उसे तुम अपनी वात समझके कहीं गलती कर वैठे तो विलकुल गलत समझ वैठोगे। मुझे वुरा-भला कह वैठोगे। एककी वात पर दूसरेका अर्थ लादे जानेके कारण ही संसारमें युद्ध-विग्रह और खून-खराबी हुआ करती है। अव मैं अपनी वातको साफ-साफ ही कह दूं तुमसे। रूपक के तौरपर ही कहना पड़ेगा, नहीं-तो इन सव वातोंका रूप ही नष्ट हो जाता है, शब्द लज्जित हो उठते हैं। केतकीके साथ मेरा सम्वन्ध प्रेमका ही है, किन्तु वह मानो घड़ेमें भरा-हुआ पानी है, रोज भरूंगा और रोज काममें लाऊंगा। और, लावण्यके साथ मेरा जो प्रेम है वह सरोवरके रूपमें वना रहेगा, वह घर लानेकी चीज नहीं, मेरा मन उसमें तैरा करेगा।"

यतीने जरा कुछ संकुचित होते हुए कहा, "किन्तु, अमित भाई-साहव, दोनोंमेंसे एक ही को चुन लेना क्या ठीक नहीं?"

"जिनके लिए ठीक है उन्हींके लिए है, मेरे लिए नहीं।"

"किन्तु श्रीमती केतकीको यदि—"

"वे सब जानती हैं। सम्पूर्णतः समझती हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकता। पर मैं अपने सम्पूर्ण जीवनसे उन्हें यही समझाऊंगा कि उन्हें मैं कहींसे भी वंचित नहीं रख रहा, धोखा नहीं दे रहा। और उन्हें भी यह समझना होगा कि लावण्यका उनपर उपकार है, वे उनकी ऋणी हैं।"

"सो होने दो, श्रीमती लावण्यको तो तुम्हारे ब्याहकी खबर जतानी ही पड़ेगी।"

"जरूर जताऊंगा। किन्तु उसके पहले मैं एक चिट्ठी देना चाहता हूं, उसे तुम पहुंचा दोगे?"

"पहुंचा दूंगा।"

अमितने चिट्ठीमें लिखा :—

"उस दिन संध्याके सन्धि-क्षणमें पथान्तमें आकर जब खड़ा हुआ, तब कवितासे ही यात्राका अन्त कर दिया था। आज भी आकर रुक गया हूं एक मार्गके अन्तमें। अब किसी बातका भार नहीं सहा जायगा। अभागा निवारण चक्रवर्ती जिस दिन पकड़ाई दिया उसी दिन मर मिटा, अत्यन्त शौकीन नाजुक जलचर मछलीकी तरह। इसीसे, और कोई उपाय न देखकर तुम्हारे ही कविपर भार सौंप रहा हूं अपनी 'अन्तिम बात' तुम्हें जतानेके लिए :—

देखा था किसी क्षण
तुम्हारे ही अन्तर्धान-पटपर
अपूर्व रूप तव
चिर-दिव्य चिरन्तन।
देखा उरके अलक्ष्य-लोकमें अनूप तव
शेष बार आगमन।
हुई चिरस्पर्शमणि प्राप्त,
मेरी शून्यताको पूर्णतासे अपनी तुम
कर गई दिग्-दिगन्त व्याप्त।

जीवन अँधेरा हुआ, इतनेमें हुआ भान
मेरे मन-मन्दिरमें तुम्हीं कर गई, देवी,
सान्ध्य देव-दीप दान।
विरह-होमाग्निके हुताशनमें
पूजनकी मूर्ति बन प्रेमने दर्शन दिया
दुःखके प्रकाशमें।
— मीना।"

इसके वाद, और भी कुछ समय बीत गया। उस दिन केतकी गई थी अपनी वहनकी लड़कीके अन्नप्राशनमें। अमित नहीं गया। आराम-कुर्सीपर वैठा सामनेकी चौकीपर पैर पसारकर वह 'विलियम जेम्सकी पत्रावली' पढ़ रहा था। इतनेमें यतिशंकरने आकर लावण्यकी लिखी-हुई एक चिट्ठी उसके हाथमें दी। चिट्ठीके एक पन्नेमें शोभनलालके साथ लावण्यके विवाहका संवाद था। ब्याह होगा छै महीने वाद, जेठके महीनेमें, रामगढ़-पर्वतके शिखरपर। दूसरे पन्नेमें लिखा था :—

हे बन्धु, मेरे मीत,
कालकी क्या यात्रा-ध्वनि सुनते हैं तुम्हारे कान ?
काल-रथ नित्य ही द्रुत-गतिमें है धावमान।
जगा रहा अन्तरीक्ष हृदयमें स्पन्दन है,
रथचक्र-पिष्ट अन्धकार
मचा रहा हाहाकार
उसीका यह छाती-फाड़ स्तब्ध महा-क्रन्दन है।
हे बन्धु, मेरे मीत,
उसी धावमान कालने
अपने जटिल जालमें
जकड़ लिया मुझे, और
[illegible] निज दूर-दूर रथमें
दुस्साहसी भ्रमणके पथमें—

ले चला है काल मुझे तुमसे अत्यन्त दूर।
लगता है मानो मैं अनन्त मृत्यु-सिन्धु क्रूर
पारकर आ गई हूं दौड़कर
आज नव प्रातके शिखरपर,
रथका चंचल वेग वायुमें उड़ाके कर रहा लय
मेरा पूर्व-परिचय।
लौटनेका पथ नहीं
दूरसे जो देखो कहीं
मुझे पहचान ही सकोगे नहीं।
हे वन्धु, मेरे मीत,
गाती मैं विदाका गीत।

किसी दिन कार्य-हीन पूरे अवकाशमें
निर्जन जिस रातमें वसन्ती वतासमें
अतीतके तीरसे वहेगी जब दीर्घ श्वास,
वृन्तच्युत वकुल-विलापसे व्यथित होगा जब नीलाकाश,
तब ढूंढ़ देख लेना, मेरे पीछे मेरा कुछ गया छूट
तब प्राणोंमें ही। वह विस्मृत प्रदोषमें उठेगा फूट,
सम्भव है फेर देगा नव-ज्योति नव-रूप,
सम्भव है नाम-हीन स्वप्नका धरेगा रूप।
किन्तु वह स्वप्न नहीं, नहीं स्वप्न सुनिश्चय,
सर्वोपरि वही मेरा सत्य, मेरा मृत्युञ्जय,
वही है मेरा प्रेम, वही है मेरा प्यार।
उसे छोड़ आई मैं तुम्हारे पास निर्विकार,
अपरिवर्तनशील अर्घ्य वह मेरा है तुम्हारे प्रति,
हे वन्धु, वही जा रही हूं मैं परिवर्तनकी धारामें क्षिप्रगति,
कालकी यात्रामें, मीत!
गाती मैं विदाका गीत।

कोई भी तुम्हारी हानि हुई नहीं।
मृत्युशील मृत्तिका है मेरी, उससे जो कहीं
तुमने अमृत-मूर्ति रची हो, तो सायंकाल
उसकी ही आरती उतारना प्रदीप बाल।
पूजा और अर्चनाका खेल वह
पायेगा व्याघात नहीं मेरे म्लान स्पर्श-द्वारा अहरह।
तृपार्त आवेगसे भी नैवेद्यके थालमें
एक भी न पुष्प भ्रष्ट होगा किसी कालमें।
अपने मानस-भोजमें सँजोया तुमने है भव्य
वाणीकी पिपासासे जो भाव-रस-पात्र नव्य,
उसमें मैं मिश्रित कदापि न करूंगी तिक्त
जो है मेरा धूलि-धन, जो है मेरे आँसुओंसे नित्य सिक्त।
आज भी तो तुम स्वतः
सिरजोगे सम्भवतः
मेरी स्मृति गूंथ-गूंथ स्वप्निल सुकाव्य-हार।
उसपर होगा नहीं दायित्व या कोई भार।
हे बन्धु, मेरे मीत,
गाती मैं विदाका गीत।

मेरे लिए करना न दुःख-शोक,
मेरे लिए पड़ा है कर्म, और पड़ा विश्व-लोक।
मेरा पात्र रिक्त कभी हुआ नहीं,
'शून्यको करूंगी पूर्ण'—धारण करूंगी सदा व्रत यही।
की हो प्रतीक्षा यदि किसीने उद्ग्रीव हो
मेरी, तो वह अनन्य
मुझको करेगा धन्य।

शुक्ल-पक्षसे निकाल
रजनीगन्धाकी डाल
कृष्ण-पक्ष रात्रिमें जो
सँजो सके अर्घ्य-थाल,
अमित क्षमासे भरी दृष्टिसे जो
मुझे देख सकता हो
मेरे गुण-दोषोंपर विना दिये रंच ध्यान,
उसकी ही पूजामें चाहती हूं देना मैं अपना नित्य वलिदान
तुम्हें मैंने दिया था जो उपहार
उसपर तुम पा चुके अशेष अधिकार।
हे वन्धु, यहाँ है –
तिल-तिलका मेरा दान,
करुण मुहूर्त-क्षण भर-भर गण्डूष आज
मेरी हृदय-अंजलिसे
कर रहे मेरा पान।
अहो तुम निरुपम,
हे मेरे ऐश्वर्यवान,
दिया मैंने तुम्हें जो कुछ, है वह तुम्हारा ही दान,
तुमने ग्रहण किया जितना ही
मुझे ऋणी किया उतना ही।
हे वन्धु, मेरे मीत,
गाती मैं विदाका गीत।

— वन्या
